अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४७ अंक : ९-१० भाद्रपद-आश्विन-कार्तिक वि.सं.- २०७८ सितम्बर-अक्टूबर, २०२१ पृष्ठ -३२ सहयोग राशि : अठारह रुपये RNI 43602/77 ISSN No.2581-9

गांधी जयन्ती पर प्रार्थना सभा

हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी २ अक्टूबर को महात्मा गांधी जयन्ती के अवसर पर राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के गांधी चौक में सर्वधर्म प्रार्थना सभा का आयोजन हुआ। प्रार्थना सभा को उभरते हुए युवा गायक हुल्लास पुरोहित ने विभिन्न रागों से सजाया। उपस्थित सभी ने भाव-विभोर होकर प्रार्थना सभा का आनन्द लिया।

समिति अध्यक्ष रमेश थानवी ने सभी का स्वागत करते हुए गांधीजी के अनछुए संस्मरणों पर चर्चा की। इससे पहले महात्मा गांधी द्वारा दिये गये भाषणों के अंश उन्हीं की वाणी में सुनाये गये। गांधीजी को याद किया गया।

प्रार्थना सभा लगभग २ घंटे तक चली। इस अवसर पर महात्मा जी के चित्रों की एक प्रदर्शनी भी लगायी गयी। सभी ने बड़े उत्साह से इस प्रदर्शनी का अवलोकन किया। ❑

काल-जारणम्
स्नेह-साधनम्
कटुक-वर्जनम्
गुण-निवेदनम्

बाबा विनोबा भावे

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४९ अंक : ९-१० भाद्रपद-आश्विन-कार्तिक वि.सं. २०७८ सितम्बर-अक्टूबर, २०२१ (संयुक्तांक)

क्रम

अपील

समिति के सभी सदस्यों, दूर-दराज के मित्रों एवं भारत के विभिन्न राज्यों में फैले सुधी पाठकों से निवेदन है कि समिति के प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखने के लिए अपनी सहयोग राशि पूरी उदारता के साथ भिजवाने का अनुग्रह करें।

आज किसी भी पत्रिका का प्रकाशन बहुत मुश्किल काम है मगर समिति अपने पूर्ण सेवा भाव के साथ अनौपचारिका को पिछले ४७ वर्षों से निरंतर निकाल रही है। सभी प्रबुद्ध पाठक जानते हैं कि अभी हाल ही में कादम्बिनी भी बंद हो गई है जो हिन्दुस्तान टाइम्स का प्रकाशन था। ऐसी स्थिति में हम कटिबद्ध हैं कि अनौपचारिका निरंतर निकलती रहे। आपका सहयोग सादर अपेक्षित है।

बैंक विवरण
BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur

I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH (Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक :
रमेश थानवी
कार्यकारी संपादक :
प्रेम गुप्ता
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-३०२००४
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

सद्भावना सहयोग :
व्यक्तिगत ३५०/- रुपये

संस्थागत वार्षिक
शुल्क ५००/- रुपये
मैत्री समुदाय ३०००/- रुपये

शिक्षा और साक्षरता : कितना विराट फलक !

साक्षरता–शिक्षा, लोक–संस्कृति,
लोक–जीवन तथा लोक–संघर्ष से
विलग नहीं हो सकती ।

– पावलो फ्रेरे

मित्रो,

सितंबर का महीना। ५ सितम्बर शिक्षक दिवस हमें अपने सम्माननीय शिक्षकों की याद दिलाता है। ८ सितम्बर अंतरराष्ट्रीय साक्षरता दिवस की याद दिलाता है। शिक्षक और साक्षरता दोनों का अन्तर्संबंध **शिक्षित** होने से है। फिर चाहे साक्षरता का सवाल हो या शिक्षक का।

शिक्षक वह धुरी है जिसके इर्द–गिर्द बालक का भविष्य घूमता है। आज के परिवेश में बाल शिक्षकों की भूमिका सम्मानजनक नहीं रह गयी है। आज के समाज में न केवल शिक्षक को बल्कि माता–पिता या अभिभावक को क्रांतिकारी शिक्षक **गिजुभाई की इस सीख** को समझना होगा कि उचित बाल शिक्षण बालकों के जीवन का प्रथम और अंतिम पड़ाव है। गिजुभाई ने शिक्षा में अनूठे प्रयोग किये। उनकी पुस्तक **दिवास्वप्न** ऐसे प्रयोगों की अद्‌भुत कृति है। यह वह समय है जब बालक के संस्कारों और नव जीवन की नींव रखी जाती है।

बालकों को शाला में काम करने की और अपनी मनचाही पढ़ाई करने की छूट मिलनी चाहिए ताकि बालक शिक्षा को बोझ समझकर ग्रहण नहीं करे बल्कि शिक्षण का भरपूर आनंद ले। यह शिक्षण उनमें पूरे जीवन सीखने की ललक को जगाये रखे। इस कारण शिक्षक की भूमिका और भी बढ़ जाती है कि वह बालकों को स्वतंत्रता का और आनंद पाने का साथ दे।

बालक सदा नवाचार करने के लिए उत्साहित रहे। लगन और उमंग जीवन के हर पड़ाव में उसकी सारथी बनकर उसके साथ रहे। नवाचार का ऐसा ही एक

प्रयोग राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के खुले प्रांगण में पेड़ों के नीचे कर रही है। इसकी झलकियां पाठक इस अंक में पायेंगे।

आज देश में शिक्षकों का दायित्व कक्षा में पाठ्यक्रम को पूरा कराये जाने का है। यह पाठ्यक्रम ऐसा है जिसकी गहन जानकारी स्वयं अध्यापकों को भी नहीं है। शिक्षा ऐसी हो जो बालकों के लिए जीवनदायी और सार्थक हो। अक्सर पाठ्यक्रम बालकों के जीवन से कटा होता है और अरुचिकर होता है। स्वाध्याय तो बहुत से अध्यापकों के लिए कोसों दूर है। यहां तक कि आज अध्यापकों में अध्यापन के प्रति न ललक है न कोई उत्साह और न ही कोई उमंग। ऐसी स्थिति में विद्यालय, कॉलेज और शिक्षण संस्थाओं में अध्यापकों की संख्या में तो बढ़ोतरी भले ही हो गयी हो परंतु वास्तव में शिक्षा को **स्वधर्म** मानने वाले शिक्षक नगण्य हैं।

ऐसे समय में शिक्षा की गुणवत्ता को भी नजर अंदाज नहीं किया जाना चाहिए। जब उन्होंने स्वयं ही आत्मानुभूति, आत्मानंद का स्वाद नहीं चखा, तो वे बालकों को कैसे उसका स्वाद करवा पायेंगे। हालांकि शिक्षकों को दोष देना उचित नहीं लगता क्योंकि आधुनिक शिक्षा पद्धति ने तो व्यक्ति को मानसिक रूप से इतना जकड़ लिया है कि वह स्वतंत्र रूप से न तो कुछ सोच सकता है और न ही कोई निर्णय ले सकता है। अमरीका के महान शिक्षाविद् जॉन होल्ट ने शिक्षा में बहुत से रोचक प्रयोग किये थे। उनका ऐसा ही एक स्कूल था जो शहर के सबसे गरीब इलाके में था। जहां सरकारी पाठ्यक्रम से हटकर संगीत एवं अन्य कलाओं की शिक्षा दी जाती थी।

गिजुभाई, मारिया–मोन्टेसोरी जैसे शिक्षक हमें इस अंधेरे में रोशनी की किरण दिखाते हैं। गिजुभाई बालकों से प्रेम करने में विश्वास रखते हैं। उनका मानना है कि अध्यापक हो या बालक, मानसिक गुलामी से ऊपर उठकर ही वे बहुत कुछ कर सकते हैं जो वे करना चाहें। शिक्षा ऐसी हो जहां न केवल बालक बल्कि पूरा शिक्षा जगत विकट विपरीत परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार हो जाये। वह अपने मस्तिष्क का प्रयोग स्वतंत्रता पूर्वक करे। अपने विवेक से हर चुनौती का सामना करना सतत सीखता रहे।

यहां शिक्षाविद् शिक्षक **शिवरतन जी** की पुस्तक **सामाजिक विवेक की शिक्षा** का स्मरण हो रहा है। इस तरह की शिक्षा के बीज अगर बालकों में अंकुरित हो जायें तो ऐसा ही विशाल वृक्ष तैयार हो जायेगा जिसकी छांव में हम सब पोषित होंगे। शिक्षकों के संबंध में शिक्षाविद् शिवरतन जी का मानना है कि शिक्षक होना अपने आप में पर्याप्त है लेकिन वह शिक्षक होना ही कठिन है, शिक्षक एक बारगी बस हो नहीं जाते हैं, वह होते रहने की अंतहीन और अनवरत प्रक्रिया है। उसके लिए चाहिए प्रयोगशील सत्य में यकीन और उसका व्यवहार करने का साहस और कौशल। ❑

– प्रेम गुप्ता

आमरा आनिबो रांगा प्रभात...

❑

सुधेन्दु पटेल

❑

सुधेन्दु पटेल वरिष्ठ पत्रकार हैं। आदिवासी अंचल से विशेष लगाव रखते हैं। आदिवासी अंचलों में रहने का उन्हें लंबा अनुभव है। गांवों को देखने का भी उनका अपना नज़रिया है। उन्होंने अपनी यात्रा राजस्थान के डूंगरपुर से शुरू की। उनका मानना है कि आज भी एक गांव जाति के आधार पर कई गांवों में बंटा है। आज भी दलितों का शोषण अंतहीन आक्रामकता के रूप में जारी है। प्रस्तुत आलेख विषमता को मिटाकर समता को रचने की मांग करता है। ❑ सं.

हम चाहते हैं कि सामाजिक तथा आर्थिक विषमता के शिकार वंचित समुदाय के सम्पूर्ण दैन्य, अज्ञान, संस्कृति-विकृति, दमन-शोषण और जाति व्यवस्था से उपजी स्थिति की निरन्तरता को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखकर रेखांकित किया जाये और इन बाधाओं को शैक्षिक प्रयास द्वारा दूर कर सार्थक मार्ग तलाश पाने की कोशिश की जाये।

जब हम जाति व्यवस्था से उपजी विषम स्थिति की निरन्तरता की बात करते हैं, तब हमारा आशय भारतीय समाज में दलितों पर एक अरसे से जारी अत्याचार से ही है । भारतीय परिवेश में पिछली कुछ शताब्दियों से समाज को बदलने के सारे प्रयत्न प्राय: निष्फल हो गये हैं । संत, कवियों और समाज सुधारकों के अपने संदेशों से भारतीय समाज की विकृतियों को मिटाने के सारे प्रयत्न एक सीमा से आगे जाकर असफल हो गये हैं। इसका मूल कारण यही समझ पड़ता है कि यह समाज इतना पुराना पड़ गया है और इसकी रचना प्रक्रिया इतनी गहरी जड़ें जमा चुकी हैं कि उसको पूरी तरह समझ पाना ही कठिन हो गया है । हमारे समाज की बनावट जटिल है, जिसमें जातियों और वर्णों के ऊंचे-नीचे सैकड़ों स्तर हैं। इनमें उलझे बगैर कोई भी परिवर्तन स्थायी असर नहीं छोड़ सकता। इसलिए समाज का संस्कार बदलना है तो इसकी रचना, प्रकृति और स्वरूप को समझना होगा। बीसवीं शती में भी सामाजिक संरचना की बुनावट से उपजे दलित सामाजिक विषमता के शिकार हैं । आज भी समता का संसार सपना बना हुआ है। अज्ञान, दमन व भय के साम्राज्य का अस्तित्व बना हुआ है।

विचार और कर्म के स्तर पर दो मुंहा बना सुविधाभोगी वर्ग सदियों से स्थापित अपना वर्चस्व स्वत: छोड़ना नहीं चाहता है। यह वही वर्ग है जिसने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक हलकों में पहरा बैठाया हुआ है। इस वर्ग की संवेदनहीनता पराकाष्ठा पर पहुंच गयी है । वह एक नितांत असभ्य, गंवार और संस्कारहीन व्यक्ति होता जा रहा है और यह प्रक्रिया इतनी तेज है कि बहुत कम लोग ही इसकी चपेट से बाहर रह गये हैं । इस तथ्य की रोशनी में आदिवासी, भूमिहीन, अस्पृश्य समाज की पिछड़ी जातियों की मौजूदा स्थिति को देखने पर मिलेगा कि असभ्यता, निर्ममता, अतृप्त सवर्ण यौनाकांक्षा, आधुनिक लुच्चेपन और राजनैतिक क्रूरता की खालिस कहानी ही दलितों की गाथा है।

दलितों के लिए बहुत कुछ किया जा रहा है, यह मानकर चलने वालों के लिए समस्या बड़ी नहीं रह जाती । एक तर्क यह भी चलता है कि शहरीकरण, औद्योगीकरण, शिक्षा का प्रसार और आर्थिक विकास के साथ-साथ छुआछूत, भेदभाव, दमन, उत्पीड़न अपने आप खत्म हो जायेंगे। लेकिन जिस हद तक शहरीकरण और शिक्षा का प्रसार हुआ है, उसे देखें तो पिछड़ी जातियों को सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं के बराबर मिली है। पिछड़ी जातियों में जिन्होंने थोड़ी-बहुत राजनीतिक ताकत या शिक्षा हासिल की है, उनमें से अधिकांश अपने ही समाज से कट गये हैं। उन्हें छोड़कर शेष लोगों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है।

दरअसल शिक्षा और शहरीकरण के साथ भेदभाव के बर्ताव नष्ट हो जाने की बात प्राय: ऊंची जातियों की ओर से ही की जाती है। यही कि ऊंची जातियों के रूढ़िग्रस्त परिवारों द्वारा पिछड़ी जातियों के साथ होने वाले बर्ताव में फर्क पड़ जायेगा; उनके विचार बदल जायेंगे और वे पहले जैसा अन्यायपूर्ण व्यवहार नहीं करेंगे। यह भुला दिया जाता है कि यह समस्या का हल नहीं है । क्योंकि ऊंची जातियों के लोग अपने विचारों से उदार हो जायें लेकिन उनका हरिजनों से गाहे-बगाहे को छोड़कर कोई सम्पर्क न हो तो स्थिति में फर्क कहां पड़ता है। एक ही समाज और देश में रहते हुए दो अलग-अलग रास्तों पर चलने की यह नीति समस्या का हल कैसे बन पायेगी?

प्रश्न के मूल में अगर जाना है तो असल में हमको तमाम देहातों की पुनर्रचना की मांग करनी होगी। क्योंकि हमारी धारणा है कि कोई एक गांव जैसी वस्तु अस्तित्व में है, परन्तु असलियत बिल्कुल भिन्न है।

एक गांव में कई गांव होते हैं। कम से कम दो तो निश्चय ही - एक सवर्णों का दूसरा अछूतों का। आज भी गांवों में उत्पादन-सम्बन्ध पूरी तरह नहीं बदले हैं, और वही ताकतें हमारे गांव पर हावी हैं। इस तरह हमारे गांव में जाति प्रथा अभी भी अहमियत रखती है।

इस संदर्भ में कुछ तथ्य और प्रवृत्तियां उभर कर सामने आती हैं, जिन्हें लम्बी-चौड़ी व्याख्या की भी दरकार नहीं है क्योंकि मूल समस्या आर्थिक है। और इसीलिए जातिगत भी है कि जमीन सवर्णों के पास ही रही है। शेष लोगों के पास मेहनत-मजदूरी के अलावा कोई चारा नहीं है। भूमि सुधार का नारा वर्षों से दिया जा रहा है किन्तु कोई भी कानून पूरी तरह से अमल में नहीं आया । औद्योगिक विकास भी इस तरह नहीं हुआ कि खेती पर निर्भर रहने वालों की संख्या घटती ।

दूसरी तरफ सरकारी कर्मचारियों और वंचितों के बीच कोई संवाद नहीं है। इसकी पुष्टि भूमि सुधार आयुक्त द्वारा नियुक्त एक अध्ययन दल की रपट से होती है जिसमें साफ शब्दों में कहा गया है: एक ऐसे समाज में जिसमें दीवानी और फौजदारी कानून, अदालती फैसले और नजीरें, प्रशासनिक परम्परा और आचरण मौजूदा सामाजिक व्यवस्था के पक्ष में हैं, ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पत्ति जमीन के

विनोबा ने कहा

विद्या और अविद्या

इन दिनों हर कोई ज्ञान के पीछे पड़ा हुआ दीखता है। यह सीखता है, वह सीखता है, एक के बाद दूसरा सीखता चला जाता है। इस तरह चित्त इतने सारे ज्ञान का बोझ ढोता है तो चिन्तन-शक्ति क्षीण हो जाती है। गीता में कहा है कि तू श्रूतिविप्रतिपन्नमति है, अनेक बातें सुन-सुनकर तेरी मति विप्रतिपन्न हुई है, अनेक विद्याएं प्राप्त कर तू विद्वान बना है, पण्डित बना है। तो उसका परिणाम यह हुआ है कि चित्त में निर्णय-शक्ति नहीं रही। चित्त अनिर्णय की अवस्था में रहता है।

रिश्तों को एक कानून के जरिये नयी शक्ल देने के प्रयास मुश्किल से ही सफल हो सकते हैं।

इस सच्चाई के बावजूद पुलिस के नक्सल विरोधी अभियान और हरिजन खेतिहरों की झोपड़ियां जलाने की तमाम घटनाएं यही बताती हैं कि विषमता और अन्याय के खिलाफ सरकार खुद कुछ नहीं करेगी और अगर कोई लाठी उठाने की कोशिश करेगा तो कानून और व्यवस्था कायम रखने के लिए उसका सफाया कर दिया जायेगा । आज भी जब हरिजनों को वर्षों के उत्पीड़न के बाद कुछ गुस्से की ताकत मिलने पर प्रतिकार की इच्छा होती है, तभी उनके मामले सर्वसाधारण को दिखायी देने लगते हैं। वैसे भी भारत में कोई भी वर्ग विशेष रूप से छोटा वर्ग तक अपने आपको सुरक्षित महसूस नहीं कर रहा है जब तक कि वह जाति के नाम पर संगठित होकर संघर्ष के लिए आमादा न हो जाये। यह स्थिति निश्चित रूप से उस कल्पना के प्रतिकूल है जो एक जाति-विहीन भारतीय समाज के लिए स्वतन्त्रता और संविधान के प्रेरक नेताओं ने की थी।

यह आकस्मिक नहीं है कि गुलाम भारत में गांधीजी से बातचीत के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि, **इस भूमि को मैं कैसे अपना देश कहूं और इस धर्म (हिन्दू) को कैसे अपना धर्म मानूं जहां हमसे पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जाता है, जहां हमें पीने का पानी भी नहीं मिल पाता... मेरा अपना कोई देश नहीं है।**

और आजादी के तीन दशकों बाद दलित साहित्यकार राजा ढाले को साने गुरुजी द्वारा स्थापित साधना साप्ताहिक के हरिजन विशेषांक में सवाल करना पड़ता है कि आखिर क्यों राष्ट्रीय झंडे का अपमान करने पर छह महीने की सजा या तीन सौ रुपये जुर्माना होता है और किसी स्त्री के वस्त्र खींचने की सजा एक महीने या पचास रुपये जुर्माना है (और दलित स्त्रियों के साथ ऐसी घटनाएं बहुधा होती हैं।) इस पर काफी विवाद उठ खड़ा हुआ। साधना साप्ताहिक की होली भी जलायी गयी। ऐसी स्थिति भी आयी कि संपादक को इस्तीफा लिखकर देने को बाध्य होना पड़ा।

इस प्रकार की घटनाओं से साबित होता है कि अब भी परम्परागत रूप से समाज पर हावी तबका उनकी मामूली-सी मांग पर बुरी तरह झुंझला उठता है। शोषित तबकों में बढ़ती हुई जागृति जैसे उसके शरीर में आग लगा देती है। चाहे कितने ही छोटे पैमाने पर क्यों न हो, दलितों की आकाक्षाएं बढ़ी हैं। वे अपने परम्परागत धन्धों से विमुख होने लगे हैं। क्योंकि अतीत की सभी प्रस्थापनाओं तथा व्यवस्थाओं से सम्पूर्ण मुक्ति पाये बिना नया समाज नहीं बनेगा, यह बात उनके गले धीरे-धीरे उतरने लगी है। लेकिन एक हरिजन या आदिवासी बिना दबे, सिर ऊंचा कर अपनी कानूनी मजदूरी की मांग करे, यह सच्चाई अभी भी ग्रामीण भारत का सवर्ण बहुलांश स्वीकार करने को तैयार नहीं है । इसे बगावत माना जाता है । फलस्वरूप दमन और अत्याचार का सामना दलितों को करना पड़ता है। उन्हें जिन्दा तक जलाया जाता है। उनकी हत्याएं, आगजनी, जमीन-जायदाद

विनोबा-वाणी

हां शिक्षण स्वतंत्र था

यहां की तालीम की दूसरी विशेषता यह थी कि यहां शिक्षण हमेशा स्वतंत्र रहा।

विचार की आजादी जितनी भारत में है, उतनी कहीं नहीं देखी। एक ही हिन्दू धर्म में कोई कर्मकाण्ड को मानता है, कोई नहीं मानता, कोई पुनर्जन्म में विश्वास करता है, कोई नहीं करता। सभी जानते हैं कि यहां छह-छह दर्शन हैं, परन्तु धर्म तो एक ही है। हां, सदाचरण के कुछ नियम सबको मानने पड़ते हैं, बाकी सब तरह से सर्वथा स्वतंत्र विचार चलता है। इसलिए यहां का शिक्षण भी सम्पूर्ण सत्ता-निरपेक्ष रहा।

कृष्ण के पिता राजा थे, लेकिन उनके राज्य में कैसी तालीम दी जाये, इसके बारे में निर्णय करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था। शिक्षा का निर्णय आचार्य सांदीपनि करते थे। यही हमारे देश का रिवाज था।

की बरबादी और उनकी स्त्रियों की बेइज्जती कोई नयी बात नहीं रही है ।

दरअसल सामाजिक बहिष्कार और आर्थिक स्तर पर उन्हें हक देने से इन्कार; मेरी समझ में वे दो बुनियादी कारण हैं जिनके चलते शोषण की एक अंतहीन प्रक्रिया आज भी वैसे ही चल रही है जैसे पहले चला करती थी। दलितों का शोषण करने वालों के खिलाफ काफी कानून बने हैं । यह मौजूदा व्यवस्था की सदाशयता का सैद्धान्तिक पक्ष है। व्यवहार में आज भी वह सामन्ती जंजीरों से जकड़ा परम्परागत दास प्रथा को ढोये जा रहा है। उसे कानून ने यह हक दिला दिया है कि वह अनुसूचित जाति और जनजाति के आयुक्त से फरियाद करे लेकिन गरीब, अनपढ़ और साधनहीन दलित उसका लाभ नहीं उठा पाता। आयुक्तों द्वारा साल दर साल पेश की गयी रपटें यह बात स्वीकार करती रही हैं कि पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने के लिए संविधान, कानून और सामाजिक, आर्थिक आन्दोलनों के बावजूद वह आज भी अछूत, शोषित, दलित और उत्पीड़ित है।

यह सच है कि दलित वर्ग ने वाल्मीकि से लेकर कहीर तक और कबीर से लेकर महात्मा फुले तक चिन्तकों की एक शृंखला तैयार की है। इससे आगे बाबा साहिब अम्बेडकर तथा महात्मा गांधी भी इस चिन्तन की दो धुरियां हो सकते हैं । लेकिन बुनियादी सवाल तो यह है कि क्या सामाजिक संरचना को बदले बिना संकीर्ण-वर्गीय स्वार्थ की जकड़बन्दी को तोड़ा जा सकता है, क्योंकि यह भी सच है कि दयावादी सुधारकों, शासन तथा स्वैच्छिक सामाजिक संस्थाओं के प्रयासों के बाद भी दलित सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक रूप से प्रताड़ित हैं। इस स्थिति में हमेशा सतही परिवर्तन का भ्रम होता है और वह भी विकृत परिवर्तन ही होता रहा है। इसके कई कारण हैं लेकिन रचनात्मक संस्थाओं का, जहां तक सवाल है देश भर में दलितों के लिए बने संगठनों के ऊंचे हिस्सों में उनकी भागीदारी नहीं होती है। आदिवासी लोगों के लिए बनी संस्थाएं अंतत: गैर आदिवासी संगठन ही बनी रहती हैं। ये संगठन उनको राहत पहुंचाने वाले संगठन के रूप में तो विकसित होते हैं, पर उनके अपने संगठन कभी नहीं बन पाते। इसीलिए उद्देश्यों की ईमानदारी के बावजूद इन संस्थाओं का लाभ समाज के प्रभावशाली तबके को ही मिलता है।

ऐसी स्थिति में एक ही पोखरी में ठहरे हुए बदबूदार पानी में निकास बनाने के लिए, जवाबी गुस्सा पैदा करने के लिए और गुस्से का सही इस्तेमाल करने के लिए जोखिम उठाना, जालिम का कहा नकार देना तथा सत्य के लिए हकदार बनना, ऐसे संगठन की सही कसौटी होगी।

मेरी राय में दलितों के प्रति किये जाने वाले अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए भूमि वितरण, खेतिहर मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी, आरक्षित स्थानों की पूर्ति, बेगारी, बेकारी, जात-पात, अफसरशाही, असमानता और आत्महीनता को समाप्त करने के लिए साक्षर-शिक्षित बनाने के प्रयत्न ऐसे कार्यक्रम हैं जिनको लेकर ही मेहनत और मेहनती की इज्जत बढ़ाने वाले संगठन बन सकते हैं । इस प्रकार के संगठन में संघर्ष की शक्ति तो होनी ही चाहिए, साथ ही विचार की एक मुहिम भी उन्हें चलानी होगी। क्योंकि किसी भी सामाजिक संरचना के बदलाव की प्रक्रिया में शिक्षा अग्रिम भूमिका निभाती रही है।

हमें विश्वास है कि सहचिंतन और सामाजिक परिवर्तन की वैचारिक क्रियान्विति से गुजर कर हमारी आस्थाओं को बल मिला है । हमारा हौसला बढ़ा है और हम सामूहिक संकल्प की तरह क्रान्तिकारी कवि नजरुल इस्लाम के स्वर में स्वर मिला कर कह सकते हैं :

उषार दुआरे हानि आघात
आमरा आनिबो रांगा प्रभात
आमरा घुचाबो तिमिर रात
बाधार विंध्याचल । ❑

बी-३१, सहदेव मार्ग,
श्री जीनगर, दुर्गापुरा, जयपुर

शिक्षक का विचार

अविजित पाठक

क्या क्रूर सत्ता, उग्र राष्ट्रवाद और बाज़ार प्रेरित तार्किकता से ग्रस्त समाज के लिए शिक्षण के पेशे में निहित गहरी दृष्टि और रचनात्मकता की सराहना व उसका परिपोषण करना संभव है? क्या वो समाज, जो अपनी शिक्षा को महज़ भौतिकवादी सफलता प्राप्त करने के लिए कुछ विशेष तरह के 'सूचनाओं के कैप्सूल' की तरह देखने का आदी हो चुका है, इस बात को स्वीकार करेगा कि शिक्षक का कार्य शिक्षा को एक 'उत्पाद' की तरह बेचने का नहीं है? जब हमारे बच्चों और उनके चिंताग्रस्त अभिभावकों के मानसिक परिदृश्य पर कोचिंग संस्थानों के 'गुरुओं' का क़ब्ज़ा हो चुका है और पूरे देश में कैंसर की तरह उग आयी लोकलुभावनी शिक्षा की दुकानें एक भोंडे बाजार-उपयोगी शैक्षणिक चिंतन को बढ़ावा देने में लगी हैं, ऐसे समय में क्या शिक्षकों को रोगहारी (रोग हरने वाला) संवाद करने वाले एक सतत यात्री की तरह देखा जा सकता है? भले ही शिक्षक दिवस जैसे विशेष मौक़ों पर हम शिक्षण के पेशे के बारे में बहुत अच्छी और पवित्र बातें करते हैं और सरकार द्वारा कुछ शिक्षकों को सम्मानित भी किया जाता है, लेकिन सत्य यह है कि एक समाज के तौर पर हमने शिक्षकों को बंधनों से मुक्ति दिलाने वाले एक शैक्षिक दूत की तरह गम्भीरता से नहीं देखा है।

शुरुआत भर के लिए एक बार हम 'अव्यावहारिक' होने का जोखिम उठाते हैं और कल्पना करते हैं कि शिक्षण का पेशा कैसा होना चाहिए। हम पायेंगे कि हमारे अन्त:मन में प्रचलित रूप से एक आदर्श शिक्षक की भूमिका एक 'ज्ञानी' और विशेषज्ञ व्यक्ति की है। लेकिन शिक्षक महज एक विषय विशेषज्ञ नहीं है। वो सिर्फ क्वाण्टम फ़िज़िक्स या मध्यकालीन इतिहास नहीं पढ़ाता, वह उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य भी करता है। एक शिक्षक अपने छात्रों के साथ एक सहयात्री की तरह चलता है,वो उनकी अंतरात्मा को छूता है और एक उत्प्रेरक की तरह अपने युवा छात्रों को अपनी विशिष्टताओं और अन्तर्निहित सम्भावनाओं को समझने में सहयोग प्रदान करता है। वो एक मशीन की तरह नहीं है जो औपचारिक पाठ्यक्रम का पठन व दोहरान करवाये, न ही वो निगरानी रखने वाला व्यक्ति है जो- अनुशासन बनाये, सजा दे, परीक्षा और परिणाम की रस्मों के सहारे अपने छात्रों को श्रेणीबद्ध और सामान्यीकृत करे। बजाय इसके उसे एक रचनात्मक व्यक्ति की तरह कार्य करना चाहिए; जो अपनी जोड़ने की कला से विद्यार्थी का उसकी विशिष्टता पर भरोसा क़ायम करे और याद दिलाये कि उसे किसी भी दूसरे की तरह होने की आवश्यकता नहीं है। उसे अपने आन्तरिक प्रस्फुटन की प्रक्रिया पर ध्यान देने को कहे और मानव रचित सफलता और असफलता के द्वंद्व को समाप्त करे।

एक और महत्वपूर्ण बात जिस पर शिक्षक को ध्यान रखना चाहिए। उसे इस बात को महसूस करना चाहिए कि शिक्षण और उपदेश देने की अपनी सीमाएं हैं, और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वो विद्यार्थी के दिमाग़ को भारी किताबी ज्ञान से भरे। बजाय इसके, उसका प्राथमिक काम विद्यार्थी की अवलोकन की शक्ति, सोचने और विचारने की क्षमता, सौन्दर्य की समझ और इन सबसे पहले अनंत
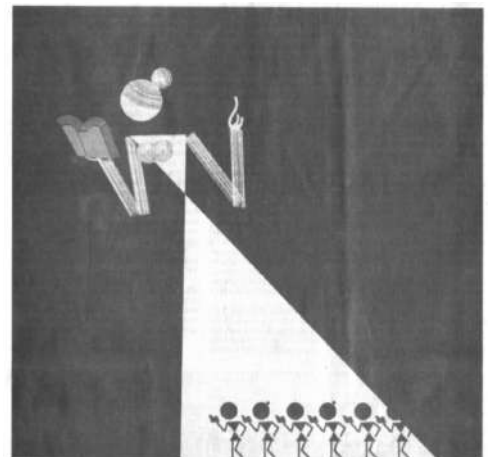
विस्तार की झलकियों को अनुभव करने की आध्यात्मिक प्रेरणा को तीक्ष्ण करने में मदद करे। दूसरे शब्दों में, एक बार जब ये शक्तियां विकसित हो जायें तो कोई भी औपचारिक डिग्रियों और डिप्लोमाओं से परे आजीवन के लिए विद्यार्थी हो सकता है। जाहिर तौर पर, शिक्षण एक समन्वय की क्रिया के रूप में और विद्यार्जन शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक विकास की योजना के रूप में बंधन-मुक्त, आज़ाद तालीम की नींव तैयार कर सकता है। आज़ाद तालीम केवल 'कौशल विकास' का कार्य नहीं है, न ही वो सिर्फ़ बौद्धिक और अकादमिक विशेषज्ञता से सम्बन्धित है।

मूलतः आज़ाद तालीम सार्थक, रचनात्मक और सुखद जीवन जीने की चाह है। यह विभिन्न प्रकार की दूसरों पर हावी होने वाली और बहकाने वाली विचारधाराओं को पहचान कर ख़त्म करने की योग्यता उत्पन्न करने वाली होनी चाहिए। आज जब लोकतंत्र के विचार को कुछ आत्ममुग्ध लोगों ने 'चुनावी प्रक्रिया' द्वारा अपने मालिक चुनने तक सीमित कर दिया है। सैन्य राष्ट्रवाद के विचार ने लोगों की मानसिकता में डर और नफ़रत को भर दिया है। नवउदारवाद ने 'स्मार्ट' होने का मतलब एक ऐसे अतिप्रतियोगी जो कैशलेस पेमेन्ट करके तुरंत संतुष्टि प्राप्त करने वाले उपभोगवादी के रूप स्थापित कर दिया है, तब एक शिक्षक की ज़िम्मेदारी है कि वो बन्धन मुक्त शिक्षा के ज़रिए छात्रों को लिंगभेद, नस्लवाद, जातिवाद, प्रकृति का नाश करने वाले विकास, खोखले उपभोगवाद और मौत की हद तक ले जाने वाली 'उत्पादकता' के विचार जिसने मनुष्य को एक रचनात्मक जीव के बजाय 'संसाधन' माना है को सवाल करना सिखाये।

विडम्बना यह है कि अभी तक हमारे मन में आज़ाद तालीम को बढ़ावा देने वाले और शिक्षण के सच्चे अर्थ को पोषित करने वाले पर्यावरण की चाह नहीं पैदा हो सकी है। भारत के किसी भी औसत विद्यालय की तरफ़ ध्यान देने पर आप पाओगे कि यह रट्टामार पढ़ाई, बहुत ही ख़राब शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात, दयनीय इन्फ्रास्ट्रक्चर, अव्यवस्थित कक्षाएं और थके हुए शिक्षकों का घर बन चुका है। ऐसे में बौद्धिक उत्तेजना और न्यायप्रियता स्थापित करने वाली शिक्षा की थोड़ी-सी भी सम्भावना नहीं है। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि एक समाज के तौर पर एक अच्छे शिक्षक के मूल्य को नहीं पहचान पाये हैं।

परिवारवाद, भ्रष्टाचार और बीएड डिग्री को छोटा आंकने के कारण शिक्षण के पेशे में भारी गिरावट आयी है। वैसे ही हमारे कुण्ठित शासक वर्ग ने देश के कुछ प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों को भयंकर क्षति पहुंचाने का कार्य किया है।

इसके अलावा हमारे प्रचलित टेक्निकल और मैनेजमेण्ट की पढ़ाई करवाने वाले संस्थान प्राथमिक तौर पर अपनी भूमिका टेक्नो-कॉरपोरेट को प्रशिक्षित मज़दूर देने तक ही समझते हैं। इन सब कारणों से शिक्षक केवल एक 'सेवा प्रदाता' और सत्ता की हां में हां मिलाने वाले पेशे की तरह सीमित हो गया है। हमारा पूरा समाज नौकरशाही द्वारा मिलने वाली शक्ति, टेक्नो-मैनेजर की नौकरी और चकाचौंध वाले सेलेब्रिटीज़ पर सम्मोहित है। तब हमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि समाज के तौर पर हमने अपने शिक्षकों को मृतप्रायः करके छोड़ दिया है।

फिर भी, उन लोगों को उम्मीद नहीं छोड़नी चाहिए जो अब भी शिक्षण के पेशे से प्यार करते हैं और इसमें अत्यधिक सम्भावना देखते हैं। आख़िर में हम वो समाज हैं जिसने गिजुभाई बधेका, रवीन्द्रनाथ टैगोर और जिद्दु कृष्णमूर्ति जैसे शिक्षकों को देखा है। जो हमें अनवरत यह विश्वास करने की प्रेरणा देते हैं कि एक शिक्षक नौकरशाही की मशीन के पुर्ज़े से कहीं अधिक है। जो अपने छात्रों के साथ सत्य का प्रकाश लिये साधक और सहयात्री की तरह चलता है और जिस संसार में हम रह रहे हैं, उसकी समझ पैदा करता है और अपने विद्यार्थियों को निम्नताओं से आज़ाद करता है। आज हमें इस प्रकार के आशा भरे शिक्षाशास्त्र का उत्सव मनाना चाहिए।❑

अनुवाद : विभांशु कल्ला

मूल लेख-इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित

जंगल क्या होता है?

❑

यह एक चौथी कक्षा की क्लास थी। मैं एक शिक्षक की अनुपस्थिति में उस कक्षा में भेजा गया था। आज क्या पढ़ना है? मैंने पूछा। फॉरेस्ट वाला चैप्टर होना है, बच्चों ने बताया। कुछ बच्चे किताब से वो अध्याय खोल कर दिखाने लगे।

अभी किताब बंद कर देते हैं और अपने दिमाग को खोलते हैं। मैंने प्रस्ताव दिया।

बच्चों के चेहरे पर आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता छलक आयी थी। अच्छा तो पहले ये बताओ कि फॉरेस्ट का क्या माने होता है। फॉरेस्ट माने जंगल होता है, बच्चों ने करीब एक स्वर में कहा। जंगल तो फॉरेस्ट का हिंदी हुआ, माने थोड़े न हुआ। जंगल क्या होता है, इसमें क्या-क्या होता है? मैंने प्रश्न को स्पष्ट करते हुए कहा।

जंगल में बहुत सारे पेड़ होते हैं। बच्चों ने सहजता से कह दिया। अच्छा! तो जहां बहुत सारे पेड़ होंगे वो जंगल होगा? हां, सरल सा जवाब था।

अच्छा, आओ हम सब अपनी कक्षा की खिड़की से बाहर झांक कर देखें। वहां बहुत से पेड़ हैं। क्या ये जंगल है?

अगले ही पल सभी बच्चे उत्साह से खिड़की पर लद से गये थे। कुछ ने कहा-ये जंगल है, कुछ ने

असहमति जतायी। असहमति जताने वालों ने कहा, जंगल में बहुत से पेड़ होते हैं पर वे काफी पास-पास होते हैं। एक बच्चे ने कहा, लोगों के लगाये पेड़ों से जंगल नहीं होता, ये खुद उगते हैं तो जंगल कहे जाते हैं।

यहां दो बातें आयी हैं-एक कि पेड़ पास-पास होने चाहिए, यानी कम जगह में बहुत से पेड़। दूसरा, कि ये प्राकृतिक ढंग से उगे होने चाहिए, मनुष्य के द्वारा लगाये गये नहीं। मैंने प्रश्न को फिर से स्पष्ट करने के बाद बच्चों को आपसी संवाद से इसका हल निकालने को कहा। मेरा काम केवल उस बातचीत को शोर में नहीं बदल कर, व्यवस्थित करना था।

पूरी बातचीत का ब्योरा देने का समय नहीं है, जो काफी रोचक और ज्ञान के निर्माण की सामाजिक प्रक्रिया का अनोखा नमूना था। इसमें स्वाभाविक रूप से जंगल कैसे बन सकता है, इस प्रक्रिया में पशु-पक्षियों का योगदान और यह प्रश्न भी कि क्या उसमें रहने वाले जीव भी जंगल का हिस्सा हैं? जैसे अद्भुत प्रश्न उठे और बच्चों ने अपने ढंग से उसे समझने और समझाने का भरपूर प्रयास किया। अंत में करीब सभी बच्चे इन दो बातों पर सहमत होते नजर आये। समय कम था पर एक छात्र की उंगली अब भी उठी थी।

क्या तुम असहमत हो? मैंने पूछा।

उसने कहा, पता नहीं, पर अगर जंगल स्वाभाविक रूप से ही उगे होते हैं तो उस जंगल में केले के पेड़ नहीं हो सकते?

अब मेरे आश्चर्यचकित होने की बारी थी। मैंने पूछा, ऐसा क्यों कह रहे हो?

उसने कहा, केले का पेड़ बीज से नहीं, पेड़ के नीचे उगे पेड़ को दूसरी जगह ले जा कर लगाने से होता है। यह पशु-पक्षियों से नहीं, केवल मनुष्य के द्वारा ही संभव है। इसलिए यदि जंगल स्वाभाविक रूप से विकसित होता है तो उसमें केले के पेड़ नहीं हो सकते।

पूरी कक्षा इस तर्क के सामने स्तब्ध और सहमत थी। मैंने जाते-जाते उनसे पूछा, क्या केले का बीज नहीं होता?

नहीं, केले में बीज नहीं होता। सभी छात्रों ने एक स्वर में कहा।

एक लड़की ठोस आवाज में असहमत होते हुए बोल उठी, केले में बीज होता है।

क्लास का समय समाप्त हो चुका था। मैंने कहा, इस विषय पर और खोज करो और आपसी संवाद से अपनी समझ बनाने की कोशिश करो। ❑

– वागीश कुमार झा

गिजुभाई बधेका

❑

गिजुभाई बधेका देश के अग्रणी बाल शिक्षाविद् थे। शिक्षण की विरल और बहुमूल्य मोन्टेसरी शिक्षण पद्धति को गिजुभाई ने गुजरात में न केवल लागू किया था, बल्कि उन सिद्धांतों को आत्मसात भी किया। गिजुभाई प्रयोगवीर शिक्षक ही नहीं थे, वे बाल–साहित्य के प्रणेता भी थे। उन्होंने गुजराती भाषा में दो सौ बाल–पोथियां लिखीं ताकि बालक स्व–अध्याय के लिए प्रेरित हो सकें।
माता–पिता व अध्यापकों के लिए कई पुस्तकें लिखीं। 'दिवास्वप्न' उनकी सबसे महत्वपूर्ण कृति है। यह पुस्तक अध्यापकों एवं शिक्षण–प्रशिक्षण विद्यालयों को नयी राह और नवाचार का मार्ग प्रशस्त करती है। प्रस्तुत आलेख गिजुभाई की पुस्तक 'शिक्षक हों तो' से लिया गया है। ❑ सं.

परीक्षा का परिणाम

❑

परीक्षा केवल बाहरी वस्तु है। इसके द्वारा सिर्फ यही ज्ञात किया जाता है कि विद्यार्थियों ने रट–रटा कर या बहुत हुआ तो समझ–समझा कर कितना–कुछ अपने दिमाग में भरा है। परीक्षा के द्वारा विद्यार्थियों की ग्रहण–धारण करने की तथा शिक्षकों की ग्रहण–धारण कराने की शक्ति का तो मूल्यांकन किया जा सकता है, परन्तु वह विद्यार्थियों के विकास को तथा शिक्षक की ऐसी विकास–क्रिया को सहयोग देने की शक्ति का मूल्यांकन नहीं करती।

परीक्षा से विद्यार्थी बहिर्मुखी बनते हैं। वह उन्हें भीतर की तरफ ले जाने के बजाय बाहर की ओर निकालती है। वह उन्हें बाह्य पैमाने पर अपना मूल्यांकन करना सिखाती है। यहीं उनमें स्पर्धा का अथवा ईर्ष्या का मूल विद्यमान रहता है। उनमें दूसरों की हार में अपनी जीत और दूसरों की न्यूनता में अपनी पूर्णता समझ में आती है तथा दूसरों की त्रुटियों की तुलना में अपनी त्रुटियों को ढकने का भाव जगाया जाता है।

परीक्षा से अभिमान आता है और निराशा भी। दूसरों की तुलना में बालक आगे आता है तो उसमें मिथ्याभिमान पैदा होता है और परीक्षा जिसको पीछे रख देती है, वह निरुत्साहित बन जाता है। कालान्तर में मिथ्याभिमानी और निरुत्साही, दोनों की प्रगति को परीक्षा अवरुद्ध कर डालती है, अभिमान जगा कर एक ओर बालकों के लिए ज्ञान के सही मार्ग में अंधकार भरती है, तो दूसरी ओर निरुत्साह पैदा करके विघ्न उत्पन्न करती है।

परीक्षा शाला में ही नहीं चलती, हमारे घरों में भी तरह–तरह की स्पष्ट–अस्पष्ट परीक्षाएं चलती हैं। यही कारण है कि आज का मनुष्य अपने भीतर का नहीं रहा, बाहर का बन गया। स्वयं अपने लिए जीने के बजाय बाहर के लिए जीता है। आन्तर– नीति, आन्तर–धर्म और आन्तर–शक्ति के बजाय वह बहिर्–नीति, बहिर्–धर्म और बहिर्–शक्ति से विमोहित होता है। बाह्य पैमाने पर स्वयं को मापता है और इसी में संतोष एवं सार्थकता अनुभव करता है। संक्षेप में, वह अपने भीतर से मरकर यानी अपनी आत्मा से मरकर, बाहर से यानी शरीर से जीता है।

जिस व्यक्ति की बाहरी परीक्षा की ही आदत पड़ जाती है, वह दिन–प्रतिदिन दम्भी बनाता जाता है। उसके मन में हर समय यही खयाल बना रहता है कि लोग उसके बारे में क्या सोचेंगे, कैसा महसूस करेंगे, कैसा मूल्यांकन करेंगे आदि–आदि। परिणाम यह होता है कि उसे

अपनी अन्तरात्मा के कथन को रोकना पड़ता है। आंतरिक वेगों को दबाना पड़ता है और अन्त में भीतर से शून्य होकर बाहर अकेले पड़े रहना पड़ता है।

जिसको बाहरी परीक्षा का विष चढ़ जाता है वह हमेशा भयभीत रहता है, हाय राम, अब परीक्षा होगी। क्या पता पास होऊंगा या फेल? परीक्षा में ऊपर चढ़ूंगा या नीचे गिरूंगा? इन भूतों से वह बेचारा भ्रमित रहता है। स्कूली परीक्षा का भय जिस क्षण पूरे जीवन में फैलता है तब तो जीवन बिल्कुल कड़ुआ लगने लगता है। अगर व्यक्ति इस भय से मुक्त नहीं होता, तो वह पागल हो जाता है।

परीक्षा की प्रथा में तैयार होने वाला मनुष्य शर्त के घोड़े जैसा होता है। जब शर्त की जाती है तभी उसमें बल आता है। जिन्दगी के जुए का एक भी प्रसंग उसे आनन्द दिये बिना नहीं जाता। जीवन को वह जुए की तरह खेलता है, देखता है-या तो हारेगा या जीतेगा।

परीक्षा के दौर से गुजरने वाला व्यक्ति व्यसनी के जैसा होता है। बाहरी दुनिया के सामने खड़े होते समय या संसार के अपवाद को समझते समय, न जाने कहां से उसके अन्दर नशेबाजों वाला क्षणिक जोश आ जाता है, पर नशा उतर जाने के बाद जिस तरह नशेबाज को टके सेर कोई नहीं पूछता वैसे ही बाहरी उत्तेजना समाप्त होने के बाद वह आदमी भी अशक्त होकर गिर जाता है।

परीक्षा ने व्यक्ति को अपने प्राणों की खोज से रोका है, उसे आत्मज्ञान के मार्ग से अवरुद्ध किया है। मूलत: वह अपना सम्पूर्ण जीवन सांसारिक दृष्टि से व्यतीत करता है, आत्मज्ञान के बजाय परायों की पंचायती में अटा रहता है।

वस्तुत: परीक्षा बाहर की नहीं, आंतरिक होती है। परीक्षा ज्ञान की नहीं, शक्ति की होती है। तथ्यों की नहीं, विकास की होती है। वह दूसरों के लिए नहीं, अपने लिए होती है, और परीक्षक भी बाहर का नहीं, अपितु भीतर का होता है।❑

चिंतन – बाबा विनोबा

श्रवण से ज्ञान

जनता पढ़-पढ़कर ज्ञानी नहीं हो सकती। वह तो श्रवण से ज्ञानी होती है। सर्वोत्तम विचार निरन्तर सुनने चाहिए, सुनाने चाहिए। नवधा भक्ति के प्राथमिक तीन साधन हैं-श्रवण, कीर्तन, स्मरण। श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्य: पहला स्थान श्रवण को दिया है। तुलसीदास ने गाया है कि राम कहां रहते हैं ?

जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना,
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे,
तिन्ह के हिय तुम्ह कहुं गृह रूरे।

जिनके समुद्ररूपी कानों में तुम्हारी कथारूपी नदियां निरन्तर बहती हैं, फिर भी जिनको तृप्ति नहीं होती, जिनके श्रवण की भूख सतेज रहती है, उनका हृदय, हे रामजी, आपके लिए उत्तम निवास-स्थान है। वहां आप आराम से रहिए।

इस तरह हमारे देश में श्रवण की महिमा गायी गयी है। हमारे यहां विद्वान को बहुश्रुत कहते हैं। अर्थात् जिसने बहुत कुछ सुना है। जबकि अंग्रेजी में **वेलरेड,** अर्थात् जिसने बहुत पढ़ा है उसको विद्वान कहते हैं। यह बुनियादी फर्क है। जैसे गाय खुद घास खाकर, पचाकर उसका दूध बनाकर बछड़ों को पिलाती है, वैसे ज्ञानी विविध ग्रंथों का अध्ययन करके अनुभवयुक्त सुन्दर ज्ञान देता है। पहले वह ज्ञान का ढेर हजम करता है और फिर वह डाइजेस्टेड फूड-पचाया हुआ खुराक हमें देता है। यह खूबी पठन में नहीं है।

श्रुति, स्मृति और कृति यही है थोड़े में हमारा शिक्षण-शास्त्र। हजारों बरसों के अनुभव से यह स्थिर हुआ है। देश का हर एक नागरिक ज्ञानी होना चाहिए यह विचार इस देश में नया नहीं है। ❑

वाज़दा खान की कविताएं एवं कलाकृति

❑

वाज़दा खान नोएडा में रहती हैं। चित्रकार एवं कवयित्री हैं। प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं में इनकी रचनाएं छपती रही हैं। ऐसी ही कुछ कविताएं कलाकृतियों के साथ हम अनौपचारिका के पाठकों के लिए यहां प्रकाशित कर रहे हैं। ❑ सं.

जमीन पर गिरी प्रार्थना

अंजुरी से निकल कर
ज़मीन पर गिरी प्रार्थना थी वह
नाद तो था उसमें
पर नीले आसमान में
मुकम्मल गूंज नहीं सुनाई देती
न जाने कितने पैरों तले
कुचली गयी
न जाने कितनी बार
कचरा गाड़ियां
उसे घूरे पर
डाल आयीं
आधी बची
प्रार्थना
हवा में ही टंगी
रह गयी
बादलों ने
अपने संग
सातवें
आसमान पर
ले जाने से
इनकार कर
दिया। ❑

तितली

नाज़ुक पंखों में जमा
रंग और बेचैनियां
लिये तितली
उड़ जाती है आकाश में
आकाश की नमी
और नीलेपन से, हिस्सा
बंटाने को
मिला देती है अपने पंखों
के तमाम रंगों में से जरा से रंग और
बेचैनियों के शेड्स
फिर कोई कथा शुरू होती आकाश से
बारिश की बूंदों के संग या सूरज की
किरनों के संग या घोर अन्धेरे में चमकती
बिजली
आकाश के
हृदय से धरती
की अतल
गहराइयों तक
पहुंचती
फिर समर्पण का
छद्म स्वप्न
शून्य नहीं रह
पाता
ढक लेता है
शाखों की नमी
को। ❑

अभिमंत्रित

एक ही लय, एक ही सुर ताल में
रंग, रेखायें और मैं
और एक दहकती हुई दुनिया
अनजान आकर्षण से भरी
उतरती है धीमे धीमे
शिव की जटाओं से उतरती गंगा सी
उसी सफेद फलक पर
अभिमंत्रित करता है जो
अपने वजूद के साथ
समाधिस्थ हो जाने के लिए।

अन्तर्यात्रा

अन्तर्यात्रा सूरज
की सीध में है
पांवों को जल
जाना है
या
सूरज पर कोई
स्वप्न टांक देना
है।❑

भासित तस्वीरें

देह यात्रा के साथ
देश, काल, समय
की सरहदों से परे
उपजती अनन्त
मायावी लोक की
तस्वीरें
भासित हैं
भीतर के मन
केन्द्र बिन्दु पर
सामान्य नहीं
हैं।❑

मोल
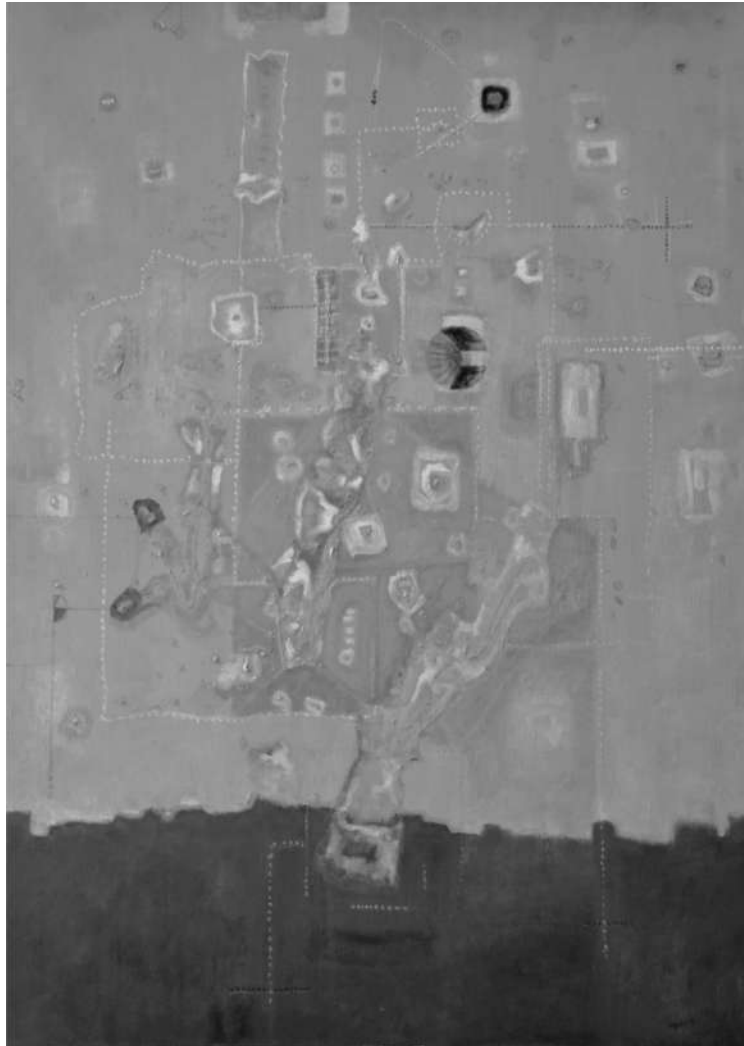
जिनके भीतर आग है
हिम्मत नहीं
तो आग का कोई मोल
नहीं।
जैसे बिल्कुल योजनाबद्ध
था यह।❑

भरी दोपहर के साथ

इक चांद उबलता है
कहीं छुपा
भरी दुपहर के साथ
तब जाकर कहीं
रात होती है। ❑

बी–८७, प्रथम तल,
सेक्टर–२३, नोएड (गौतम बुध नगर)–
२०१३०१
मो.८३६८७७५५१६

डायरी लेखन से शिक्षा

❑
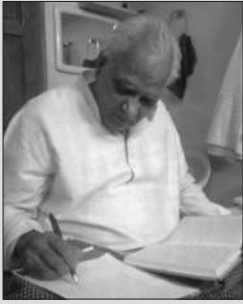
शिवरतन थानवी

❑

सुप्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री शिवरतन जी ने लम्बे समय तक शिक्षा की पत्रिका 'शिविरा' और 'नया शिक्षक' का संपादन किया। उन्होंने जोधपुर जिले के फलोदी कस्बे में जीवन बिताया। शिवरतनजी गिजुभाई और दयालजी माड़साब से लेकर इवान इलिच, जॉन हॉल्ट और पावलो फ्रेरे के शैक्षिक विचारों से प्रभावित थे। उनकी महत्वपूर्ण कृति 'आज की शिक्षा कल के सवाल' है। शिवरतन जी के लेखन में सजगता और सरलता है। वे शिक्षक में सतत ग्रहणशीलता पर जोर देते हैं। स्वाध्याय और डायरी लेखन जैसे विचारों से वे ओत-प्रोत थे। प्रस्तुत आलेख उनकी 'सामाजिक विवेक की शिक्षा' नामक पुस्तक से लिया गया है। पाठक इसका लाभ उठा सकेंगे। ❑ सं.

एक गतिविधि ऐसी है जो शिक्षण-कार्य का अंग भी हो सकती है और सहशैक्षिक गतिविधियों में भी स्थान पा सकती है। एक बात का जरूर ध्यान रखना है कि यह अनिवार्य न बने। इसे स्वैच्छिक रखना बहुत जरूरी है। तभी यह असरकारक बनेगी।

यह गतिविधि है डायरी लेखन। जानते तो होंगे आप सभी लोग, पर ध्यान शायद ही कभी दिया हो। ध्यान दीजिए। जरूरी नहीं कि यह काम भाषा-शिक्षक ही करे। भाषा-शिक्षक भी कर सकता है और अन्य विषय-शिक्षक या स्वयं संस्थाप्रधान भी कर सकता है। स्टाफ में तय हो कि कौन शिक्षक अपनी कक्षा को डायरी लेखन की प्रेरणा देगा। या संस्थाप्रधान घोषणा कर सकता है कि निजी अनुभवों को डायरी रूप में लिखना जहां एक ओर भाषा विकास में मदद करता है वहां वह सोचना भी सिखाता है और अच्छे स्वभाव अपनाने का अभ्यास भी कराता है। इससे चारित्रिक शिक्षा होती है और नैतिक स्तर भी ऊंचा उठता है।

कैसे लिखेंगे डायरी हमारे विद्यार्थी और क्यों लिखेंगे, यह हमें उन्हें समझाना होगा। एक तो यह बताना होगा कि वे जो भी अपने आस-पास देखते हैं वह लिखना है, जो अनुभव करते हैं वह लिखना है और इसलिए लिखना है कि अपने आपको बताना चाहते हैं हम कि हम क्या देख रहे हैं और हम क्या सोच रहे हैं। एक तरह से हम हमारा ही इतिहास लिख रहे हैं। और हम इसलिए भी लिख रहे हैं कि हमें लिखना सीखना है। लिख-लिख कर यह जानना है कि हम कैसा लिख सकते हैं और अपने लिखे को कैसे और अच्छा बना सकते हैं। यह रोज का काम नहीं है। जब मर्जी हो तब करने का काम है।

शिक्षक की भूमिका यही है कि वह विद्यार्थियों में यह मर्जी पैदा करें। उनके सामने यह तथ्य रखें कि वे सभी लेखक हैं और उन्हें अपने निजी जीवन की कहानी एक किताब में उतारनी है। उनका निजी जीवन इस किताब में प्रतिबिम्बित होना है। छोटी-सी कॉपी से वे यह किताब शुरू कर सकते हैं। इसका नाम रख सकते हैं, 'मेरी डायरी' या 'मेरी किताब' या 'मेरी कहानी'। कॉपी बनायेंगे, कॉपी पर नाम लिखेंगे, तब विद्यार्थी की मर्जी बनेगी उसमें कुछ लिखने की। मर्जी बनेगी अपने जीवन की घटनाओं पर नज़र डालने की,

उन घटनाओं में से आज के लिए चुनने पर विचार करने की। यह नज़र डालना, चुनना और चुनने के लिए विचार करना ही उसके उस दिन का जरूरी काम हो जायेगा। डायरी का पन्ना उसके जीवन के उन पलों में आश्चर्यजनक चमत्कार पैदा करेगा। वह उस चमत्कार को महसूस करेगा और लिख-लिख कर पुलकित होगा। जरूर प्रसन्न होगा।

हम डॉक्टर हों, इंजीनियर हों, दुकानदार या व्यापारी या उद्योगपति हों, सामाजिक या राजनीतिक कार्यकर्ता हों, नेता हों, सैनिक हों या अधिकारी हों, किसी भी क्षेत्र में हों या किसी भी पद पर हों, चाहे शिक्षक ही क्यों न हों, यदि हम डायरी लिखते हैं तो जरूर प्रसन्न होते होंगे। विद्यार्थी जीवन से यदि हम इसके लाभ को समझ कर डायरी लिखने का अभ्यास डाल सकें तो फिर देखिए कि कैसा आपका चरित्र निखरता है और व्यक्तित्व बनता है। चारित्रिक विकास के लिए और व्यक्तित्व निर्माण के लिए डायरी भी एक उत्तम माध्यम है। हमें विद्यालयों की पाठ्यक्रमेतर प्रवृत्तियों में इसे भी स्थान जरूर देना है।

डायरी लिखना भी एक तरह का पत्र लिखना है। यह पत्र खुद को लिखा जाता है। किसी को कोई पत्र हम कब लिखते हैं? जब कहने को कुछ हो। इसको उलट कर कहें तो यों कहेंगे कि जब पत्र लिखना तय कर लिया तो हम सोचेंगे कि क्या लिखें? यह सोचना भी एक बहुत बड़ा काम है। सोच कर लिखने को कोई प्रसंग ढूंढना पड़ता है। यह प्रसंग ढूंढ निकालना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सृजनात्मक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया हमारा व्यक्तित्व बनाती है और हमारे चरित्र को विकसित होने में मदद करती है।

यही हाल डायरी लेखन का है। वह भी सृजनात्मक प्रक्रिया इस अर्थ में है कि वह भी एक पत्र है खुद को, जिसमें लिखने को कोई विषय, कोई माल-मसाला ढूंढना पड़ता है। बिना प्रसंग क्या लिखेंगे? प्रसंग सोचिए और लिखिए। यह तो तय करना ही है कि लिखना है। तय करेंगे तभी कोई प्रसंग पैदा होगा। एक संस्था ने अपने शिक्षार्थियों में डायरी लेखन का अभ्यास कराने के उद्देश्य से २४ पेजी कॉपियां तैयार करायी जिनके प्रथम आवरण पृष्ठ पर 'मेरी किताब' शीर्षक दे कर नाम, कक्षा, उम्र आदि अंकित किया तथा आवरण के अन्तिम पृष्ठ पर शीर्षक रूप में सुझावात्मक निर्देश लिखा- यह आपकी किताब है। आप इसके लेखक हैं। आप इस किताब में कुछ भी लिख सकते हैं। कभी भी लिख सकते हैं।
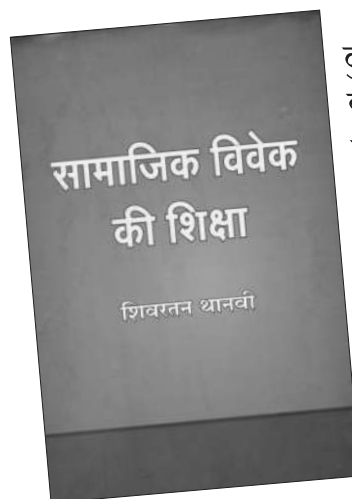
अग-जग की बातें, दीन दुनिया की बातें, मेरी तेरी उसकी बातें। गाँव की बातें, शहर की बातें, गली-मोहल्ले की बातें, जो सुनी आज या कल। पास-पड़ोस की बातें जो सुनी थीं आज या कल। बाजार में क्या देखा-सुना, आज या कभी। मन्दिर-मस्जिद में क्या देखा-सुना, आज या कभी। त्योहार कैसे मनाया इस बार। किताब क्या पढ़ी, थोड़ा उसका हाल। किस किताब में क्या पसन्द आया, थोड़ा उसका हाल। नानी-दादी ने जो कहानी सुनायी वह क्या थी? चुटकुला जो पसन्द आया वह क्या था? जो गीत सुना गांव-गली में, वह क्या था? जो गीत सुना त्योहारों पर वह क्या था? पूरा-अधूरा जितना भी सम्भव हो। खेलों की बातें, कुश्ती, कबड्डी, गुल्ली-डण्डा, मारदड़ी, फुटबॉल आदि। खेतों की बातें-क्या क्या करते हो वहां। पेड़ों की बातें-कैसे-कैसे कितने पेड़ देखे कहां कब घासफूस की बातें-काम की घास, काम का फूस। काम का कबाड़, कबाड़ के उपयोग। दूध-दही-छाछ की बातें। ढोर-डांगर की बातें। भेड़-बकरी और एवड़ की बातें। गाय-भैंस-बैल की बातें। कविताएं जो पसन्द आयीं। फिल्में जो अच्छी लगीं-थोड़ा उसका हाल। फिल्में जो बिल्कुल पसन्द नहीं आयीं-थोड़ा उसका हाल। अच्छे गुरुजी-कैसे अच्छे, क्यों अच्छे ? गांव-शहर के बूढ़े-बुजुर्गों की बातें-कौन क्या कहता है? आप उनकी

क्या मदद करते हैं? चिड़ियों की बातें–रूप, रंग, आवाजें। चिड़ियाघर का वर्णन। अजायबघर या म्यूजियम का वर्णन। मित्र, शिक्षक, पड़ोसी, व्यापारी, खिलाड़ी, कुछ भी।

जब भी लिखो, जितना भी लिखो, उस पेज पर तारीख जरूर लिखो।

ऐसे ही आप और भी नये–नये सुझाव दे सकते हैं। जो स्वयं स्वेच्छा से कभी भी कुछ अपनी कॉपी में डायरी रूप में कुछ लिखने की चेष्टा करेगा, उसका भाषा ज्ञान बढ़ेगा, अभिव्यक्ति–शक्ति बढ़ेगी और व्यक्तित्व निर्माण होगा। दुःख भरे दिनों और सुख भरे दिनों का वर्णन करना आ जायेगा।

अमेरिका की एक शिक्षक एरिन ग्रुवेल ने अमेरिकी शहरों के झोंपड़–पट्टी वाले हिंसा व गरीबीग्रस्त इलाकों के स्कूलों में डायरी–लेखन सिखाते–सिखाते छात्र–छात्राओं में ऐसा आत्मविश्वास भरा, ऐसा संस्कार दिया कि वे उपद्रवी हिंसक स्वभाव छोड़कर सुसंस्कृत नागरिक बन गये और ऊंचे–ऊंचे पदों पर काम करने लायक हो गये। डॉक्टर, इंजीनियर, पायलट, कलाकार व साहित्यकार बन गये। उनके इस प्रयोग को आप उनकी पुस्तक 'फ्रीडम राइटर्स डायरी' (ब्रोडवे बुक्स, न्यू यॉर्क) में विस्तार से पढ़ सकते हैं। उनको उनकी इस सफलता के कारण कई कॉलेजों व विश्वविद्यालयों से निमन्त्रण मिले और उनके इस चमत्कारी कार्य पर फिल्म भी बनी। मैंने फिल्म से ही इस सम्बन्ध में पहली सूचना पायी और पुस्तक की खोज बाद में कर वह भी मंगवायी।

डायरी लेखन की महत्ता पर ध्यान केन्द्रित कर जो शिक्षक इस विधि का व्यवहार अपनी कक्षाओं में करेंगे, वे जरूर इसका लाभकारी प्रभाव देख सकेंगे।

अन्त में दो शब्द स्वयं शिक्षकों की डायरी के लिए। विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति का अभ्यास करवाने, उनका स्वभाव बदलने, उन्हें नये संस्कार देने और उनका व्यक्तित्व निर्माण करने में मदद के उद्देश्य से आप उनको डायरी लिखवाते हैं तो आप स्वयं भी डायरी लिख कर अपना खुद का बहुत बड़ा भला कर सकते हैं। फायदा उठा सकते हैं। शिक्षक की एक डायरी स्कूल प्रशासन लिखवाता है। दूसरी डायरी वह निजी लाभ के लिए स्वेच्छा से लिख सकता है। जो भी अनुभव विद्यार्थियों के बीच और स्कूल स्टाफ के बीच उसे होते हैं, उन्हें वह समय–समय पर घर की डायरी में लिखता रहे तो उसे भविष्य में बहुत लाभ होगा। व्यक्तित्व बनेगा। चारित्रिक उत्थान होगा। जब भी वह डायरी लिखने बैठेगा, उसे सोचना पड़ेगा कि क्या घटना ली जाये और उसे कैसे लिखा जाये। इससे वह चिन्तनशील बनेगा और उसकी लेखन–शैली व भाषा प्रांजल बनेगी। ज्यों ही वह एक–दो पेज लिख लेगा, उसे सफलता की अद्भुत प्रतीति होगी। लिखना आसान नहीं है। लिखेगा तो जानेगा कि लिखना कितना कठिन है, कितना सरल है और फिर उसे समझ आयेगा कि लाभकारी होने के साथ–साथ कितना आनन्ददायक भी है। तब वह खुद को अपने विद्यार्थी की जगह रख कर सोचना सीखेगा। वह इस प्रक्रिया से जो सोचना सीखेगा, उससे उसकी सृजनात्मक शक्तियां विकसित होंगी। तब वह विद्यार्थी के सृजनात्मक विकास का भी आभास पा सकेगा। विद्यार्थियों का और उसका साथ–साथ विकास होगा। भविष्य में उसकी यह निजी डायरी उसके शैक्षिक चिन्तन की प्रतिरूप पुस्तक का रूप भी ले–ले तो कोई आश्चर्य नहीं।❑

'सामाजिक विवेक की शिक्षा' पुस्तक से साभार

अमेरिका की एक शिक्षक एरिन ग्रुवेल ने अमेरिकी शहरों के झोंपड़–पट्टी वाले हिंसा व गरीबीग्रस्त इलाकों के स्कूलों में डायरी–लेखन सिखाते–सिखाते छात्र–छात्राओं में ऐसा आत्मविश्वास भरा, ऐसा संस्कार दिया कि वे उपद्रवी हिंसक स्वभाव छोड़कर सुसंस्कृत नागरिक बन गये और ऊंचे–ऊंचे पदों पर काम करने लायक हो गये।

संकट में साबरमती आश्रम

❑

प्रेरणा–विश्वजीत

❑

करीब १३ लंबे सालों तक महात्मा गांधी के घर की हैसियत का साबरमती आश्रम पिछले दो साल से सरकार के पर्यटन उद्योग की निगाहों में चढ़ गया है। नतीजे में गांधी की सादगी, शुचिता और किफायत के मूल्यों को ठेंगे पर मारते हुए साबरमती आश्रम को वर्ल्ड क्लास बनाने पर सरकारी जुगत बिठायी जा रही है। प्रस्तुत है, साबरमती आश्रम की मौजूदा स्थिति पर प्रेरणा– विश्वजीत का यह लेख। ❑ सं.

साबरमती आश्रम को लेकर पिछले दिनों से कई तरह की खबरें आ रही हैं।

प्रधानमंत्री ने भी यह संकेत दिया है कि साबरमती आश्रम का स्वरूप बदल कर, उसे वर्ल्ड क्लास बनाया जाये। आधिकारिक तौर पर ऐसे बदलाव की कोई पक्की जानकारी आज तक किसी ने नहीं दी है, लेकिन लगता है कि कई लोगों और हलकों को इसकी पूरी जानकारी है। यह खबर अभी–अभी आयी है कि आश्रम में रहने वाले कई परिवारों से घर खाली करवाया गया है और उनमें रहने वालों को मुआवजा या फिर वैकल्पिक घर देने की बात भी हुई है, हो रही है।

जब यह खबर पहले–पहल २०१९ में सामने आयी थी तब गांधी–विचार की तीन प्रमुख संस्थाएं, गांधी शांति प्रतिष्ठान, गांधी स्मारक निधि और राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय के प्रमुख लोगों का ध्यान इसकी तरफ गया था। और गांधी शांति प्रतिष्ठान के अध्यक्ष प्रशांत ने अहमदाबाद में इसकी चर्चा और इसके पीछे के खतरों की बात कई जिम्मेवार लोगों से की थी। फिर तीन संस्थाओं के प्रमुखों के संयुक्त हस्ताक्षरों से एक पत्र साबरमती आश्रम ट्रस्ट की प्रमुख इला बेन भट्ट को २०१९ के आखिरी दिनों में लिखा गया

हृदय–कुंज के सामने बापू, बा आदि

था। इसमें इस सरकारी योजना पर अपनी चिंता जताते हुए कहा गया था कि हम सबको साथ बैठकर इस बारे में अपनी भूमिका बनानी चाहिए और देश को बतानी भी चाहिए। इला बहन ने इस पत्र की पहुंच भी लिख भेजी थी और यह भी लिखा था कि वे इस पत्र को अपने सभी ट्रस्टियों को भेज रही हैं ताकि आगे की बात सोची जा सके।

बात कुछ आगे बढ़ती, इससे पहले ही देश को कोरोना ने अपनी चपेट में ले लिया। देश पर कोरोना महामारी का कर्फ्यू-सा लाद दिया गया, लेकिन सरकार अपनी सारी शंकास्पद योजनाओं पर पर्दे के पीछे से काम करती रही। गांधीजनों के साथ किसी भी प्रकार के परामर्श के बगैर साबरमती आश्रम प्रोजेक्ट बना लिया गया और उसके कार्यान्वयन का कैलेंडर भी तैयार हो गया जिसके मुताबिक अब काम भी शुरू हो गया है।

वर्ष १९१७ में गांधीजी ने अपने पैसों से जमीन का एक टुकड़ा अहमदाबाद के इलाके में आश्रम बनाने के इरादे से खरीदा था। अगले दो-एक वर्षों में अहमदाबाद की जेल और श्मशान के बीच, साबरमती नदी किनारे की जमीन भी उन्होंने दोस्तों की मदद से खरीदी। उनके मन में शायद ऐसा एक प्रतीक भी था कि एक सत्याग्रही को मृत्यु (श्मशान) और जेल के लिए हर वक्त तैयार रहना चाहिए, तो मेरे भावी आश्रम में इन दोनों का मेल हो। इस तरह कुल १०० एकड़ की यह जमीन खरीदी गयी और गांधीजी का साबरमती आश्रम बना।

गांधीजी ने आश्रम से अपने रचनात्मक कामों को आगे बढ़ाने के लिए पांच ट्रस्ट बनाये-१. साबरमती आश्रम संरक्षण और स्मारक ट्रस्ट,
२. साबरमती हरिजन आश्रम ट्रस्ट,
३. खादी ग्रामोद्योग प्रयोग समिति,
४. साबरमती आश्रम गोशाला समिति और
५. गुजरात हरिजन सेवक संघ।
गुजरात खादी ग्रामोद्योग मंडल।

इसी के तहत कई दलित परिवारों को आश्रम परिसर में रहने के घर भी दिये गये। उनमें से कई परिवारों की चौथी पीढ़ी आज भी इस परिसर में रहती है।

गांधीजी की हत्या के छह दिनों के भीतर ही एक समिति का निर्माण किया गया जिसमें जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल,

राजेन्द्र प्रसाद सरीखे लोग थे। इन महानुभावों ने मिलकर तय किया कि साबरमती आश्रम में चलने वाले गांधीजी के सारे कामों को तीन भागों में इस तरह संचित किया जाये कि आने वाली पीढ़ियों को उनसे प्रेरणा मिलती रहे। ये तीन भाग थे-संग्रहालय, गांधीजी का लेखन और उनके रचनात्मक काम।

इस समिति के निर्माण के ठीक एक साल बाद गांधी स्मारक निधि का गठन हुआ। उसका काम भी गांधीजी के विचारों-कार्यक्रमों का संरक्षण व प्रसार तय किया गया। यह भी तय हुआ कि गांधीजी का काम सरकारी पैसों से नहीं हो सकता है। इसके लिए जन-सहयोग का रास्ता अपनाया जाना चाहिए। इस तरह १९५०-५३ तक नागरिकों से धन-संग्रह का काम चला। इस दौरान साढ़े पांच करोड़ रुपये देश की आम जनता ने दिये। देश भर के मजदूरों ने अपनी एक दिन की मजदूरी दी। तय यह किया गया कि जनता से जितना पैसा इकट्ठा होगा, उतना ही योगदान उद्योगपति और धनवान लोगों द्वारा दिया जायेगा। इस तरह गांधी स्मारक निधि के पास ग्यारह करोड़ रुपयों की राशि इकट्ठी हुई।

इस राशि में से ४३ लाख रुपये साबरमती आश्रम को मिले। आश्रम ने उसमें से २० लाख रुपये गुजरात विद्यापीठ को बुनियादी तालीम के लिए दिये। बचे २३ लाख रुपयों से वह काम शुरू हुआ जिसे साबरमती आश्रम परिसर में रहने वाले सभी ट्रस्टों ने शिद्दत और समर्पण से

अब तक चलाया। जेल और श्मशान के बीच के १०० एकड़ के फैलाव में साबरमती नदी किनारे बसा आश्रम सिकुड़कर अब मात्र ४५ एकड़ रह गया है। नदी का किनारा शहर के सौंदर्यीकरण के नाम पर कैद कर दिया गया है।

आश्रम परिसर में उसका इतिहास पहले ही छिन गया था, अब हर बात वर्ल्ड क्लास की, पर्यटन के विकास की होती है। गांधीजी की दृष्टि और रचनात्मक काम को उनका आग्रह कहीं बचा नहीं है। वर्ल्ड क्लास बनाने की होड़ इस तरह जारी है कि सादगी व मितव्ययिता के प्रतीक सरदार वल्लभभाई पटेल की ३००० करोड़ रुपये की मूर्ति बनवायी गयी है।

इसमें कोई शंका नहीं है कि पिछले ७० सालों से गांधीजी के लेखन को, उनकी स्मृतियों को और उस दौर के इतिहास को संजोने का काम आश्रम के कार्यकर्ताओं ने बहुत ही निष्ठा और लगन से किया है। देशभर के वरिष्ठ गांधीजनों ने समय-समय पर उनका मार्गदर्शन भी किया, सहयोग भी दिया। सन् २००४ में जब गांधीजी के संपूर्ण वाङ्मय को गलत ढंग व इरादे से विकृत करने की कोशिश की गयी थी, तब भी सबसे पहली आवाज यहीं से उठी थी। यहीं के प्रयासों से वह सारी कोशिशें नाकाम हुई थीं और सारा वाङ्मय डिजिटाइज हुआ था। आज भी गांधी को, गांधी-साहित्य को, इतिहास के तथ्यों को बदलने की गलत कोशिशें होती रहती हैं और आश्रम, गुजरात विद्यापीठ जैसी संस्थाएं उनसे लड़ती भी रहती हैं।

हमारी यह भूमिका यदि प्रशसंनीय है तो यह सच भी बेहद डरावना है कि हमारे होते हुए भी सरकारों ने लगातार ही गांधीजी से अलग दिशा व उल्टी सोच से काम किया है। पिछले सात सालों से यह उल्टी दौड़ बड़ी तेजी से व गहरी योजना के साथ आगे बढ़ायी जा रही है। कोशिश यह हो रही है कि देश के सभी संस्थानों में हिन्दुत्व की विचारधारा के लोगों को इस तरह बिठाया जाये कि गांधीजी के सर्वधर्म समभाव के इतिहास व प्रयास के साथ छेड़खानी आसानी से हो सके। इसके एक नहीं, अनेक प्रमाण हैं जिसे सारा देश देख भी रहा है, और जान भी रहा है। गांधीजी की दिशा की हर सोच को नियंत्रित करने का काम, ऐसा सोचने व मानने वालों पर गहरी निगरानी का काम अब लगभग अपने अंतिम चरण में पहुंचा है। इनकी घुसपैठ लगभग सभी गांधी-संस्थाओं में हुई है, हो रही है और यह योजनाबद्ध काम बड़ी बारीकी से, लेकिन सत्ता के जोर पर किया जा रहा है। ❑

सप्रेस से साभार

बापू का पत्र मेरे नाम

❑

प्रभा पारीक

❑

सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती प्रभा पारीक स्वतंत्र पत्रकार हैं। जयपुर में जन्मी प्रभाजी राज्य संसाधन केन्द्र भरूच, जन शिक्षण संस्थान भरूच के एन.एम. होम साइन्स कॉलेज की प्रिंसिपल के पद से सेवानिवृत्त हुई हैं। गांधी मुक्त विश्वविद्यालय व बाबा साहेब अंबेडकर मुक्त विश्वविद्यालय में काउंसलर भी रही हैं।

इन्होंने गुजरात सरकार के लिए महिलाओं तथा बालिकाओं पर लेखन, नुक्कड़ नाटक द्वारा प्रचार-प्रसार कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी निभायी।

इन कार्यों के लिए श्रीमती प्रभा जी को राष्ट्रीय स्तर पर अनेक साहित्य सम्मान प्राप्त हुए हैं। इनकी रोचक रचना 'बापू का पत्र मेरे नाम' यहां प्रकाशित की जा रही है। ❑

फ्लैट नं.-२०२, प्लॉट नं. ११, प्रेस्टिजअपार्टमेंट्स, सहदेव मार्ग, अशोक नगर पुलिस थाना, सी-स्कीम, जयपुर

मेरी प्यारी देश वासिनी,
शुभाशीष,

मेरे मन में जब से देश के प्रति लगाव व प्रेम की भावना का विस्तार होने लगा, तब से मैं मेरे देश भारत को सदा स्वतंत्र और बलवान देखना चाहता था और भारतीयों को आजाद। रंग भेद से आहत मेरा मन इस सोने की चिड़िया कहलाने वाले देश को संजोने-संवारने-सहेजने के लिए अपने प्रयासों की ओर केन्द्रित रहने लगा। मैं सदा देश को एक सूत्र में पिरोये रखना, भारत को धर्म निरपेक्ष रखना चाहता था, यही मेरा सपना था। मैं कभी भी देश को धर्म- जाति के आधार पर बंटते हुए नहीं देखना चाहता था। इस ओर मेरे सारे प्रयास उस समय विफल लगने लगे जब भारत का बंटवारा धर्म-जाति के आधार पर हो गया था। तब से लेकर आज तक धर्म को लेकर मेरे देशवासियों के विचारों में विशेष परिवर्तन दिखायी नहीं दिया। आज भी ऊँची जाति, पिछड़ी जाति, धर्म का भूत, आरक्षण, धार्मिक वैमनस्य के रूप में देश में हर क्षेत्र में नजर आता है। राजनीतिक लाभ के लिए इस सोच को और हवा देना आम होता जा रहा है।

मेरे देशवासियो! मैंने सदा लोकतंत्र की असली शिक्षा पर बल दिया था। पर आजकल लोकतंत्र की परिभाषा का एक सीमित अर्थ रह गया है। अपने देश को लोकतान्त्रिक देश कहलाना, उस पर मान होना एक बात है, पर असली लोकतंत्र-लोकहितों को ध्यान में रखकर अक्षरश: पालन करना दूसरी बात है। इस शब्द का सही अर्थ समझाने के लिये मैं वर्षों इंतजार करता रहा। पर आज भी मेरे देश में लोकतंत्र अक्सर शर्मसार होता नजर आ रहा है। मेरे देश ने कई क्षेत्रों में अपार प्रगति की है, मैं खुश होता रहा पर मेरे प्यारे सपनों के भारत की आंतरिक दुर्दशा पर विचार कर दु:खी भी होता रहा। आजादी से पहले मेरा सपना था कि हर भारतीय शिक्षित हो, क्योंकि भारत की गरीबी व पिछड़ेपन का कारण मैं अशिक्षा ही तो मानता था। पर अब लगता है कि इसका कारण हमारी पिछड़ी सोच भी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत ने शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी प्रगति की है पर तुम लोग अपनी पुस्तकीय शिक्षा को जनोपयोगी बना कर रोजगार के लिए तैयार नहीं कर पाये। हाल के कुछ

वर्षों में विश्व गुरु की ओर अग्रसर भारत अपने ही वैदिक, पौराणिक, यौगिक ज्ञान से दूर होता नज़र आ रहा है। शिक्षा मात्र नौकरी पाने के लिए नहीं है। वरन् जीवन को सुखमय शान्तिमय और समृद्धि की ओर ले जाने वाली भी है। इसके स्थान पर हम भारतीयों ने कौशल वर्धक शिक्षा को नगण्य समझा और विदेशों से प्रभावित पुस्तकीय ज्ञान को अग्रिम स्थान पर रखा। इसका महत्व तुम्हें आज समझ आ रहा है, जब तुम छोटी-छोटी बातों के लिए दूसरों की मदद को ताक रहे हो। तुम विज्ञान का अर्थ मात्र भौतिक प्रगति समझ कर जी रहे हो।

मेरे प्यारे देश वासियो! विज्ञान का अर्थ जीवन को सरल बनाने के साथ साथ सुरक्षित बनाना भी है।

हमें हमारे घर, परिवार, देश की जरूरतों को पूरी करने के लिए किसी पर निर्भर न रहना पड़े, इसीलिए तो हमने आजादी से पहले आन्दोलन के द्वारा विदेशी छोड़कर स्वदेशी अपनाने पर बल दिया था। हम सदा से आत्मनिर्भरता को अपना लक्ष्य मानकर चलते थे। पर कुछ वर्षों से हम तो हर बात में विदेशियों पर निर्भर रहकर उनका मुंह ताकने लगे हैं पर अब पुन: भारत ने आत्म निर्भरता का महत्व समझा और इस दिशा में प्रयास आरम्भ भी किये हैं। अब इस पर पूर्णशक्ति से प्रयास करना है।

भारतीय संस्कृति जनमानस में

आन्तरिक शक्ति को जगा कर स्वयं में परिवर्तन लाने पर जोर देती आयी है। ग्रामोद्योग स्वतंत्र समाज की प्रथम आवश्यकता है। हमारे समाज की ऐसी सामाजिक व्यवस्था हो जो सरकार पर ही पूर्णतया निर्भर न हो, मैंने जनभागीदारी के तौर पर स्वच्छता पर बल दिया, हथकरघा, लघु उद्योग, दस्तकारी जैसे कौशल वर्धक ज्ञान पर जोर दिया था। आज करीब ७५ वर्षों के बाद पुन: इसी तरह की शिक्षा के कार्यक्रमों की आवश्यकता नजर आ रही है।

सत्य, अहिंसा के आदर्श हमारे देश ने स्थापित किये, उस पर आज भी सतत चलते रहने की आवश्यकता है। तुम्हारे धर्म के नाम पर किये इन कोलाहलों में धार्मिकता कहीं मुंह छुपा कर बैठी नजर आती है। हर किसी का दावा है कि वह तो धर्म का रक्षक है जो भीड़ जुटा लेता है और तब वह धर्म का अधिष्ठाता बन बैठता है। मैं रामराज्य अवश्य लाना चाहता था पर मेरे राम वो नहीं जो मात्र दशरथ पुत्र हैं। सत्य को खोजना, सत्य को पहचानना, सत्य को लोक संभव बनाने की साधना करते हुए लोकमानस में प्रतिष्ठित करना मेरा रामराज्य था। क्योंकि मेरी धार्मिकता, नैतिकता और सत्य पर आधारित थी। मेरा किसी सिद्धांत, परम्परा व कर्मकांड से कोई संबंध नहीं था।

मेरे देशवासियो! इंसानियत के धर्म की आज पूरी दुनिया को जरूरत है। साम्प्रदायिक सद्भाव हर क्षेत्र में जरूरी है। उसके स्थान पर धर्म के नाम पर समाज के ठेकेदार, राजनीतिज्ञ, सरकारें सभी अपना आपना फायदा देख रही हैं। हिंसक आन्दोलन पलभर के लिए प्रभाव डालते हैं, अपनी छाप छोड़ सकते हैं लेकिन अहिंसक आन्दोलन धीरे-धीरे ही सही स्थायी प्रभाव डालते हैं। जातिगत तथा दूसरे स्वार्थ जनित आन्दोलनों को हम सामाजिक आग्रह नहीं मान सकते।

मैंने सदा अपनी कथनी-करनी में एकता, निजी-सार्वजनिक जीवन में भी एकरूपता के माध्यम से कर्तव्य निर्वहन करते हुए, जन-जन को सार्वजनिक भूमिकाओं से दूर रखने वाली पुरुषवादी परम्परा का उन्मूलन किया। क्योंकि मुझे, मेरे देश को एक नयी उर्जा, नयी सोच देनी थी। देश की आजादी के साथ देश वासियों की संकीर्ण सोच से भी

आजादी दिलानी थी। जो तभी संभव था जब वह अपनी छोटी-छोटी समस्याओं से ऊपर उठकर दूसरे किसी क्षेत्र में विचार करने को तत्पर हों।

हमारी संस्कृति के पतन को मैं अश्रुभरी नजरों से देखता हूं। मेरे विचार से हमारी फिल्में हमारे प्रचार-प्रसार के साधन विदेशी सोच के साथ हमारे इतिहास को इतने आकर्षक ढंग से प्रस्तुत कर रहे हैं कि इस तरह की समस्याएं हमारे सामने न होते हुए भी हम उसी तरह की सोच रखने लगे हैं। और उसी तरह की समस्याओं का भ्रम हमारे समाज में भी पैदा हो रहा है, ये सोच कर व्यवहार करने लगे हैं। इस पर विराम आवश्यक है।

मैंने सदा अपनी गलतियों से सीखा, मैं गलतियां करता था तो स्वीकार भी करता था। हम लोग सदा से जड़ों पर काम करने में विश्वास करते थे। हम एक ऐसी जीवन शैली अपनाने की बात करते थे जिसमें समस्याएं हों, जिसका कारण व समाधान भी स्पष्ट हो, इसीलिए मैंने, सदा चिन्तन व मनन पर भी बल दिया। हमारा युवा वर्ग हमारे देश की असली ताकत है। इसे ऊर्जावान रखना, सही राह पर चलाना हम देशवासियों का दायित्व है क्योंकि जिस देश के पास इतनी युवा शक्ति हो, उसे मात्र किसी हथियार या सैन्यबल पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। अब तो समाज के बदले स्वरूप में महिलाओं के योगदान को देख कर भी प्रसन्न हूं, पर महिलाओं के अपमान से मेरा मन आहत है। हम भारतीय पुरुषों को महिलाओं के प्रति अपनी मानसिकता में सुधार लाना जरूरी है, तभी सच्चे अर्थों में परिवार, समाज राष्ट्र की प्रगति सार्थक है। हमें हमारी आधी आबादी को साथ लेकर चलने के लिए उन्हें उचित सम्मान देना ही होगा। मेरे देशवासियो! विश्व टकटकी लगाये आशाभरी नजरों से तुम्हें देख रहा है, उठो और देश के गौरव, देश हित हेतु कुछ अच्छे निर्णय लो और आगे बढो। ❑

तुम्हारे राष्ट्रपिता बापू
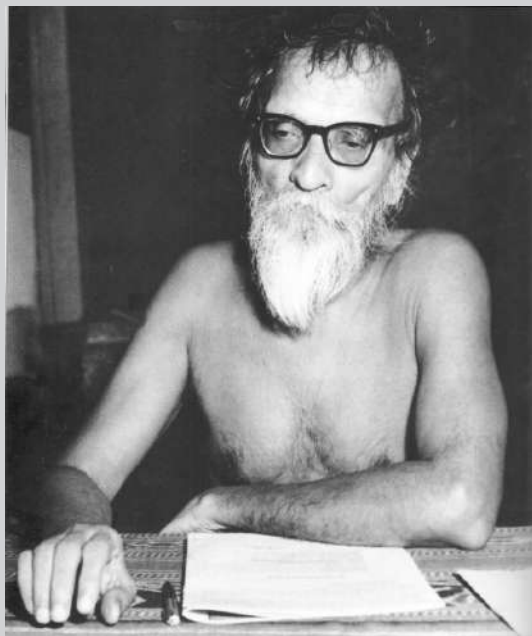
बाबा विनोबा

साक्षर या सार्थक

किसी आदमी के घर में यदि बहुत-सी शीशियां भरी रखी हों, तो बहुत करके वह मनुष्य रोगी होगा, ऐसा हम अनुमान करते हैं। पर किसी के घर में बहुत-सी पोथियां पड़ी देखें, तो हम उसे सयाना समझेंगे। क्या यह अन्याय नहीं है? आरोग्य का पहला नियम यह है कि अनिवार्य हुए बिना शीशी का व्यवहार न करो। वैसे ही जहां तक संभव हो, पोथी में आंखें न गड़ाना या यों कहिए, आंखों में पोथी न गड़ाना, यह सयानेपन का पहला नियम है। शीशी को हम रोगी शरीर का चिह्न मानते हैं। पोथी को भी, फिर चाहे वह सांसारिक पोथी हो या पारमार्थिक, रोगी मन का चिह्न मानना चाहिए। ❑

याद रहेगा वह विद्यालय

❑

सूर्य प्रकाश जीनगर

❑

श्री सूर्य प्रकाश जीनगर जोधपुर में हिन्दी के वरिष्ठ अध्यापक हैं। साहित्यकार हैं। इनके बहुत से लेख प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं प्रकाशित होते रहे हैं। इन्होंने अपने अध्यापन काल में बच्चों के साथ रचनात्मक एंव आनन्ददायी शिक्षण के महत्व को जाना है, उसका स्वाद चखा है। बालकों के मनोविज्ञान को न केवल जाना है बल्कि उसे हृदय से स्वीकार भी किया है। इनका मानना है कि एक अध्यापक ही बालकों के जीवन में सतरंगी रंग भरता है इसके साथ ही वह स्वयं भी नित नया सीखता है और उसका अनुभव करता है। प्रस्तुत रचना में वे अपने अध्यापन के अनुभव का साझा कर रहे हैं।

❑ सं.

दयाकौर स्कूल (जोधपुर) में मेरे अध्यापन के छह वर्ष जीवन भर याद रहेंगे। मेरे सपनों का स्कूल। बतौर हेड मास्टर जो कार्य करने के लिए हमेशा सोचता वही साकार हो जाते। आनंददायी शिक्षण के साथ अपने श्रम का अनूठा स्वाद चखने को मिलता। सभी कार्यों में विशेष योगदान स्टाफजनों की मेहनत के साथ उत्साह से लबरेज बच्चों को मानता हूं।

फलोदी कस्बे से ३० किलोमीटर दूरस्थ ग्रामीण स्कूल में मेरे पहुंचने के बाद हमेशा मुस्कुराते चेहरों के साथ बच्चे अभिवादन करते। बाइक पर रास्ते भर की थकान बच्चों के उत्साही रूप को देखकर मिनटों में छू–मन्तर हो जाती। दयाकौर मिडिल स्कूल में पढ़ाने के साथ–साथ मुझे रचनात्मक गतिविधियों के लिए भरपूर अवसर मिले। अनेक नवाचारों से युक्त प्रार्थना सभा बच्चों को जहां आनन्द देती थी, वहीं हमें नित्य नया करने की इससे ताकत मिलती।

बच्चों का निराला अनुशासन, सीखने के प्रति अदम्य जिज्ञासा एवं सुन्दर परिवेश की त्रिवेणी में मन का पाखी उड़ान भरने लगता। विश्राम के समय खेलकूद करते बच्चों के वो चेहरे आज भी जेहन में ताजा हैं। साइकिल सीखती हुई लड़कियां ... साइकिलों के पीछे भागती हुई नन्ही–नन्ही बालिकाओं का हुजूम। सचमुच, मेले जैसा माहौल साकार हो उठता। रस्सी कूदती, सतौलिया खेलती हुई लड़कियों का समूह इन्द्रधनुषी छटा बिखेरता था स्कूल के खेल मैदान में। यह देखकर हर विद्यार्थी खेलने के लिए लालायित हो उठता था। स्कूल में होने वाली शनिवारीय बाल सभा, उत्सव एवं जयन्तियों के दौरान बालकों की प्रतिभा का नयनाभिराम रूप देखकर मन मयूर की तरह नृत्य करने लगता। इस दौरान विद्यार्थी प्रोत्साहन पुरस्कार पाकर खिल उठते।

मैंने २३ वर्षीय अध्यापन के दौरान कभी किसी बालक को बेंत (डण्डा) दिखाकर डराया नहीं, बल्कि प्रेम से समझाने पर जोर दिया। दण्ड की जगह पुरस्कार को महत्व दिया। बच्चे डण्डे की मार से बिगड़ते हैं, बल्कि उनमें सीखने का भाव धीरे–धीरे खत्म भी हो जाता है। मुझे शिक्षण से बेहद प्यार है। बच्चों को अनुशासन में रखने का मार्ग अपने विषय की अच्छी तैयारी को मानता हूं। मेरे गुरुजनों ने मुझे हमेशा बाल मनोविज्ञान की जो आनंददायी सीख दी है, वही मेरे शिक्षण का पाथेय है। ऐसे विद्यालय जहां बालक आनंद से सीखता है, वहां शिक्षक स्वयं नित्य नया सीखता है, ऐसा मेरा मानना है।

❑२५३–ए, हरि सदन, इन्दिरा कॉलोनी, फलोदी, जिला जोधपुर (राजस्थान)–३४२३०१
मो.नं. ९४१३९६६१७५

मिशन ताना–बाना के लिए प्रसिद्ध युवा चित्रकार विनय अंबर ने कुछ रंगीन पोस्टर प्रसिद्ध कवियों की कविताओं के साथ बनाये हैं। पिछले दिनों विनय अंबर समिति में आये थे और आनन्दशाला के बच्चों को भी इन्होंने चित्र बनाने सिखाये। ❑
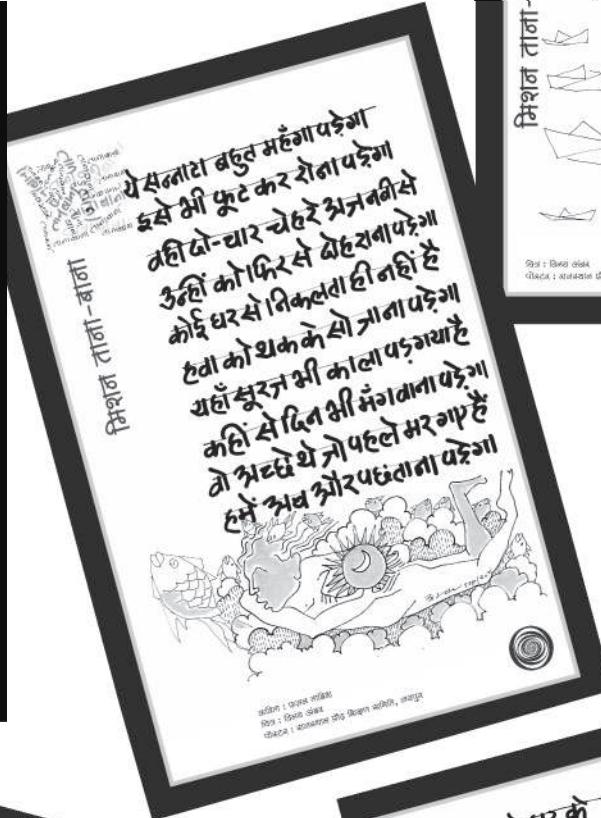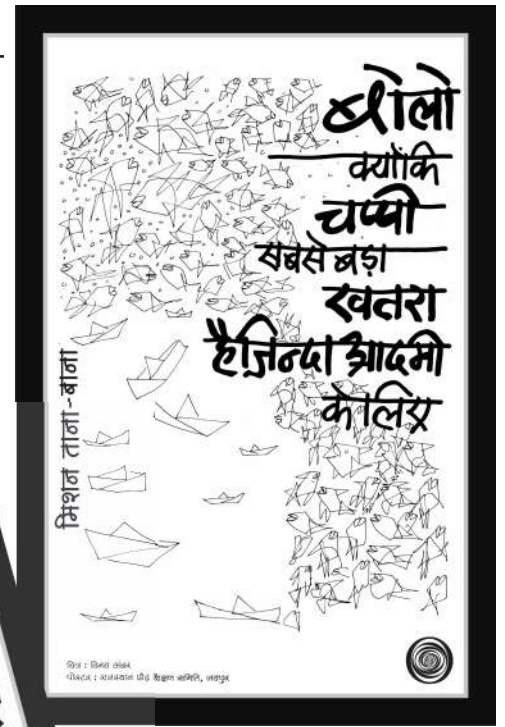
श्रीलाल मोहता स्मृति : पुस्तकालय का शुभारंभ

❑

बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति के पूर्व अध्यक्ष एवं उरमूल सीमांत समिति, बज्जू के संस्थापक, प्रख्यात लोक-कला मर्मज्ञ, साहित्यकार, मौखिक इतिहास के वक्ता डॉ. श्रीलाल मोहता की स्मृतियों को कभी भुलाया नहीं जा सकता। आपका सम्पूर्ण जीवन सामाजिक एवं साहित्य के क्षेत्र को समर्पित रहा।

डॉ. श्रीलाल मोहता हमेशा इस बात की चिंता किया करते थे कि भविष्य में पढ़ने की आदत लुप्तप्राय न हो जाये। इसी चिंता के कारण वे हमेशा ही पढ़ने की आदत को बचाये रखने के लिए पुस्तकालयों के प्रति लोगों का रुझान बढ़ाने का समर्थन करते थे। इसी बात को ध्यान में रखकर बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति, बीकानेर, उरमूल सीमांत समिति, बज्जू ने ये निर्णय किया कि डॉ. श्रीलाल मोहता के नाम से पुस्तकालय शुरू किया जाये जिसमें युवक एवं युवतियां पुस्तकें पढ़ सकें और उनमें पढ़ने की आदत का विकास हो।

बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति, और उरमूल सीमांत समिति की अध्यक्ष श्रीमती सुशीला ओझा ने श्रीकोलायत के गांव भेळू में उरमूल के विस्तार भवन के एक हॉल को इस कार्य के लिए देने का प्रस्ताव रखा। बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति ने इस पुस्तकालय को पुस्तकें नि:शुल्क देने की सहमति दी।

बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति की माननीय सदस्या श्रीमती उषा मोहता (डॉ. श्रीलाल मोहता की धर्म पत्नी) के कर कमलों से स्मृति पुस्तकालय का शुभारंभ हुआ। अपने उद्बोधन में आपने कहा कि बस मोहता जी के कार्यों को पूरा करना ही अब मेरे जीवन का उद्देश्य रह गया है।❑

अन्तरराष्ट्रीय साक्षरता दिवस मनाया

❑

अन्तरराष्ट्रीय साक्षरता दिवस पर जन शिक्षण संस्थान कोटा के सभागार में समारोह आयोजित किया गया। कार्यक्रम में संस्थान के निदेशक मुकेश राठौड़ ने कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की। संस्थान के प्रशिक्षणार्थियों ने साक्षरता से जुड़ी प्रस्तुतियां दी।

इस अवसर पर जिला प्रौढ़ शिक्षण समिति एवं जन शिक्षण संस्थान के अध्यक्ष श्री आर.पी.गुप्ता ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में साक्षरता यात्रा का विस्तृत विवरण देते हुए प्रशासन से अपील की कि वह कोटा मुख्यालय पर साक्षरता कार्यालय को पुन: स्थापित कर इस राष्ट्रीय कार्यक्रम को गति प्रदान करे। इस अवसर पर सभी लाभार्थियों ने अपने आसपास के पांच असाक्षर महिलाओं व पुरुषों को साक्षर करने का भी संकल्प लिया।

कार्यक्रम में जिला प्रौढ़ शिक्षण समिति के सचिव श्री राजीव मल्होत्रा, श्री हरीश शर्मा ने भी संबोधित किया गया। अंत में रवीन्द्र लोहमी द्वारा आभार प्रकट किया गया। ❑

समिति में आनन्द शाला

❑

रमेश थानवी

आनन्द शाला सबसे पहले तो शिक्षा के अन्वेषण की शाला है। इसकी आवश्यकता इसलिए है कि सारा शिक्षा जगत इस बात से अनभिज्ञ है कि शिक्षा कब घटित होती है और किस विध घटित होती है। बालक को खाली घड़ा मान लेने या कोरा कागज मान लेने की मान्यता पुरानी है। बचपन का अर्थ ही यह है कि वह मान-अपमान को समझता है और स्वभाव से स्वयं रचनाशील होता है। इस रचनाशीलता में उसके सीखने का सुख समाहित होता है। लेकिन सारे शिक्षा संस्थान बिना किसी वत्सल-भाव के बालक को सब कुछ सिखा देने की ही कोशिश में लगे हुए हैं। यह पूरा परिदृश्य हमारे लिए बहुत दुख:दायी रहा है, इसीलिए हमें किसी ऐसी शाला की आवश्यकता थी जो बालक की आजादी और बचपन की रक्षा करते हुए उसके सीखने के अनुभव को आनन्द का अनुभव बना दे।

आनन्द शाला का विचार हमारे मन में पिछले चालीस वर्षों से उमड़-घुमड़ रहा था। अन्तत: बहुत छोटे स्तर पर और साधन-संपन्नता के अभाव में भी हमने आनन्द शाला ५ सितम्बर २०२१, शिक्षक दिवस को प्रारंभ कर ही दी। हम जानते हैं कि यह एक बहुत बड़ा काम है, मगर हम इसकी आंतरिक विराटता को समझते हुए एक छोटे से विनम्र प्रयोग में जुट गये हैं।

❑ आनंद की इस पाठशाला में बालकों को कोई बस्ता लेकर नहीं आना होगा। आनंद की रचना करने के लिए सारी सामग्री वहां रहेगी। खेलने को खुला आकाश होगा। देखने को कुदरत का हरा-भरा रंग बिरंगा बगीचा होगा। ५ से १० बरस तक के बच्चों को लेकर आयें या मुझे उनके नाम भेजें। क्योंकि हम प्रारंभ में केवल १० बच्चे ही ले सकेंगे। स्कूली भाषा में यहां कुछ नहीं होगा और आनंद की भाषा में यहां सब कुछ होगा। अनंत प्यार, दुलार, गाने को गीत, सुनने को कहानियां, देखने को सपने और सपनों में अपना संसार रचने की पूरी आजादी।

❑ आनंद की यह पाठशाला ५ बरस से १० वर्ष तक के बच्चों के लिए होगी यहां केवल १० बच्चों के साथ शाला का शुभारंभ किया जायेगा। इस पाठशाला का पहला सत्र ३ महीने का होगा और हर दिन पाठशाला का समय सवेरे १०:०० बजे से दोपहर १:०० बजे तक रखा जायेगा। इसलिए कि कोई बालकों को सवेरे जल्दी जगाने की जुर्रत न करे किसी को बच्चों का टिफिन भी तैयार नहीं करना है। तीन घंटे की पाठशाला में नाश्ता, पानी, दूध इत्यादि की व्यवस्था वहीं पर होगी।

❑ आनंद शाला कोई स्कूल नहीं होगी वहां न कोई कक्षा होगी और ना कोई परीक्षा। अभय और आनंद का वातावरण होगा। सब कुछ जानने, सीखने का अवसर भी होगा। मगर वही जो बच्चे चाहेंगे यहां पर बच्चे स्वयं अपने पाठ्यक्रम की रचना करेंगे और सीखने के साथ-साथ गायेंगे, नाचेंगे, खेलेंगे, खायेंगे और आनंद करेंगे । हर पल यहां रचना का सुख देने वाला होगा यहां कक्षा पेड़ों के नीचे सिर्फ जाजम बिछाकर लगाई जायेगी।

❑ यहां सीखने की खुली छूट के आनंद की शाला होगी।

❑ आनंद शाला में कक्षा नहीं

होगी। परीक्षा नहीं होगी। फिर भी सीखना होगा ।

❑ सीखना सुखदायी होता है । सीखने में सदा आनंद की रचना होती है।

❑ कभी कोई दहशत पैदा नहीं होती। सीखना अभय देता है। आजादी देता है। ऐसे ही सीखने को हमें आनंदशाला में सींचना है और पल्लवित पुष्पित होने देना है।

❑ सीखने में कुछ भी आरोपित नहीं होता है। उपदेश नहीं होता है। उपदेश की भाषा में जैसे सौंदर्य की अनुपस्थिति होती है। वह सीखने की भाषा में हो ही नहीं सकती। सीखने की प्रक्रिया ही सौंदर्य की रचना करती है। अपने परिवेश को भी परिमार्जित करती है सीखना सुगंध फैलाता है, मन को पुलकित करता है। तन को रोमांच से घेर लेता है और दिल को आलोकित करता है। ऐसे ही सीखने को संभव बनायेंगे आनंदशाला में।

❑ एक और जरूरी बात, सीखने में कभी कोई सीख शुमार नहीं होती है। सीखना अपने आप में एक अंतर्निहित आजादी लिये चलता है। आजादी, आनंद और अभय तीनों सीखने के अवयव हैं। हमें संभव बनाना है।

❑ शिक्षा के क्षेत्र में जो मित्र काम कर रहे हैं, उनसे मेरा सवाल है कि बालक ने जो सीखा है उसका नापतौल करने का हमारे पास तराजू कौन-सा है?

यह आनन्द शाला तीन संस्थाओं इरादा, नाना-नानी न्यास एवं राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के संयुक्त प्रयास से चलायी जायेगी।❑

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा ७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४ से प्रकाशित। संपादक - रमेश थानवी

रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X